डॉ० सी० वी० रामन और उनके सहयोगी

पपीते में लिंग भेद

पर्यावरण की त्रासदी और हम

ब्रह्माण्ड-विषयक सात विचार

रंगों की रंगीनियाँ

सितम्बर 1991 अंक

वार्षिक मूल्य : 25 रुपये   प्रति अंक : 2 50 पैसे

विज्ञान परिषद, प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 1913; विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
सितम्बर 1991; वर्ष 77 अंक 6

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०
वार्षिक : 25 रु०
एक प्रति : 2 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

प्रकाशक
डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

सम्पादक
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मुद्रक
अरुण राय
प्रसाद मुद्रणालय
7ए, बेली एवेन्यू
इलाहाबाद-211002

सम्पर्क
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

डॉ० सी० वी० रामन और उनके सहयोगी

स्वामी डॉ० सत्यप्रकाश सरस्वती

[नोबेल पुरस्कार से विभूषित प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक **डॉ० सी० वी० रामन** का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। डॉ० रामन की विश्वविख्यात खोज 'रामन इफेक्ट' का दिन, 28 फरवरी, 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' के रूप में प्रतिवर्ष मनाया जाता है। पिछले दिनों 'इण्डियन एकेडेमी ऑव साइन्सेज', बेंगलोर ने **'साइंटिफिक पेपर्स ऑव सी० वी० रामन'** नाम से 6 खण्डों में डॉ० रामन के शोधपत्रों को पुस्तकाकार प्रकाशित किया है (लगभग 4000 पृष्ठ)। इसके सम्पादक **डॉ० एस० रामाशेषन** हैं। ये खण्ड हैं—

1. स्कैटरिंग ऑव लाइट
2. ऑप्टिक्स
3. एकाउस्टिक्स
4. ऑप्टिक्स ऑव मिनरल्स एण्ड डायमण्ड
5. फ्लोरल कलर्स एण्ड विजुअल परसेप्शन
6. फिजिक्स ऑव क्रिस्टल्स

हमारे देश में एक अजीब बात देखने में आती है। जब कोई व्यक्ति महान व्यक्तियों की कोटि में पहुँच जाता है, तब हम ईर्ष्या, द्वेष से जलने लगते हैं और हर तरह से उसकी टाँग खींचते हैं। एक वैज्ञानिक किस विचित्र तरह से परेशान किया जाता है इसका ज्वलंत उदाहरण थे डॉ० सी० वी० रामन, जिन्हें कलकत्ता छोड़कर बेंगलोर जाने के लिए विवश किया गया गया था और बेंगलोर में भी डॉ० रामन के रास्ते में काँटे बिछाये गये। किन्तु डॉ० रामन अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए।

—सम्पादक]

1970 में रामन साहब का संसार से विदा होना और मेरा संन्यास लेना लगभग साथ-साथ हुआ। मैंने 1932 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० (D. Sc.) किया। एक दिन यह तय किया क्यों न ग्रीष्मावकाश में रामन साहब के पास चला जाये। मैं डॉ० धर का शिष्य था। मैंने डॉ० धर से इस बात का जिक्र किया। डॉ० धर ने न हाँ कहा, न न कहा। मैंने रामन साहब को पत्र लिखा कि मैं आपके साथ शोधकार्य करना चाहता हूँ। मैंने अकार्बनिक रसायन में जेलियों पर शोध कार्य किया था, अनेक जेलियाँ तैयार की थीं। इस आशय का पत्र श्रीमती सरस्वती रामन जी को भी मैंने लिखा। उत्तर आया। मैं चला गया।

ऋतम्भरा, विज्ञान परिषद् परिसर, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

उनके विद्यालय की कार्यविधि का मुझे ज्ञान नहीं था। श्री **महेन्द्र लाल सरकार** बंगाल के विशिष्ट व्यक्ति थे। उन्होंने वह विद्यालय खोला था। मैं विद्यालय, जो झोपड़ी नुमा था, पहुँचा। वह बाजार से कुछ दूर। वहाँ कुछ लोग महाराष्ट्र और देश के दूसरे भागों के भी थे। कुछ पहले से कार्यरत थे। मेरे ठहरने की व्यवस्था चितरंजन एवेन्यू में थी। दिन भर की प्रतीक्षा के बाद सायंकाल मुझे सर रामन से मिलने का अवसर मिला। मैं केमिस्ट्री का व्यक्ति था, विद्यालय फिजिक्स का। एक सज्जन आशु बाबू थे। मुझे कुछ उपकरण चाहिये था। एक दर्जन टेस्ट ट्यूब, एक ब्यूरेट आदि। उन्होंने दूकानदार को फोन किया। सामान आ गया। उस समय जो सामान चाहिए वह व्यवसायी पहुँचा देते थे। स्टोर की आवश्यकता ही नहीं थी।

दूसरे दिन मैं रामन लैब में पहुँचा। लैब उनके निवास के पीछे थी। यहाँ से मेरा परिचय रामन साहब से हो गया। मैं अपनी बनाई जिन जेलियों को अच्छा समझता था, दिखाया। रामन साहब ने उसे बड़ी आसानी सेसमझ लिया। मुझे बैरियम ऐसीटेट और मैंगनीज सल्फेट मिला। मैंने जेली बैरियम सल्फेट बनाया। रामन साहब ने देखा और उन्होंने कहा कि इसके अन्दर पानी है। जेली में पानी तीन तरह का होता है। रामन साहब ने कहा जेली को हाईप्रेशर में निचोड़ो। उन्होंने एक बात और कही, "सत्यप्रकाश आओ, खेलो-कूदो, यहाँ रहो।"

प्रयोगशाला में कुछ मैग्नेट थे। वहाँ द्रव वायु देखा। द्रव वायु में सब चीजें ठंडी हो सकती हैं, हाथ पर छोड़ने पर जलता नहीं। मैंने कहा, "मैं यहीं से कार्य आरम्भ करूँगा।" मैंने जेली और द्रव वायु पर काम किया। द्रव वायु में जेली को डुबाने से जेली ठंडी हो जाती है। जेली दो प्रकार की। एक वह जो जम जाये, दूसरी जो जमे नहीं। वहाँ से 'इन्डियन जर्नल ऑव फिजिक्स' छपता था। 'कल्टीवेशन ऑव इन्डियन साइन्सेज' नामक संस्था भी वहाँ थी।

वहाँ मेरी मुलाकात एक व्यक्ति से हुई। लुंगी लगाये एक मद्रासी चले आते थे। वे **डॉ० के० एस० कृष्णन** थे। के० एस० कृष्णन साहब ढाका विश्वविद्यालय से थे और **डॉ० एस० एन० बोस** के शिष्य थे। बी० एस-सी० करके आये थे। बाद में एम० एस-सी०, डी० एस-सी की उपाधियाँ लीं। कृष्णन साहब और रामन साहब दोनों का एक ही तरह का काम था। रामन साहब कृष्णन को 'महेन्द्र लाल सरकार चेयर' क्रियेट करके वहीं छोड़ जाना चाहते थे, क्योंकि रामन को बेंगलोर में निदेशक का पद मिल चुका था।

जब मैं रामन साहब के पास था, उसी समय की बात है कि लोगों ने वहाँ एक सभा आहूत की। सभा में मैं भी था। रामन को इस सभा के विषय में सही जानकारी नहीं थी। **नीलरत्न सरकार** नाम के एक व्यक्ति थे। उन्होंने बीस-पच्चीस फेलो अपने रुपयों से बनवाये थे। **गणेश प्रसाद** जी भी वहीं थे। वे पलित प्रोफेसर थे और उनके सेवा के एक्स्टेंशन का सवाल था। गणेश प्रसाद जी कोषाध्यक्ष भी थे। ढेर सारे नये बंगाली सदस्य जो इस मीटिंग में उपस्थित थे, शोर मचा रहे थे और रामन साहब के लिए अपशब्दों का प्रयोग कर रहे थे। मैं मूक दर्शक था। इस सभा के माध्यम से रामन साहब को काफी मानसिक क्लेश पहुँचा। **डॉ० मेघनादा** साहा ने तो रामन साहब का सदा विरोध किया।

डॉ० बी० एन० श्रीवास्तव मेरे सहपाठी थे। उन्होंने हीट (Heat) विषय पर एक किताब लिखी। पुस्तक के पहले संस्करण में तो रामन साहब द्वारा लिखी हुई भूमिका प्रकाशित थी, किन्तु दूसरे संस्करण में रामन द्वारा लिखी भूमिका गायब थी। कहते हैं कि ऐसा साहा साहब के प्रभाव से हुआ। जब साहा साहब इलाहाबाद विश्वविद्यालय में

नये-नये आये थे तब मैं बी० एस-सी० प्रथम वर्ष का विद्यार्थी था। कुछ लड़के उनके क्लास में शरारतें भी किया करते थे। साहा साहब में बहुत गुण थे, पर रामन साहब का उन्होंने सदैव विरोध किया। डॉ० श्यामा प्रसाद मुकर्जी भी रामन के विरोधियों में थे।

कलकत्ता में लोगों के व्यवहार से क्षुब्ध होकर रामन साहब कलकत्ता छोड़ बंगलोर चले गये। सर पी० सी० रे० ने भी रामन के विरोध में सक्रिय भूमिका निभायी।

मै जब भी बेंगलोर जाता था, रामन और श्रीमती रामन से अवश्य मिलता था। एक बार मेरी शिष्या शोभे लक्ष्मी भी मेरे साथ रामन साहब से मिलने बेंगलोर गई थीं। रामन साहब को बेंगलोर में भी परेशान किया जाने लगा।

जब साहा साहब इलाहाबाद छोड़कर चले गये तब मैंने डॉ० कृष्णन को रसायन विभाग और रामन को भौतिकी विभाग के अध्यक्ष (इलाहाबाद विश्वविद्यालय) बनाने के सम्बन्ध में डॉ० अमरनाथ झा से बात की। झा साहब ने मेरी बात को धैर्यपूर्वक चुपचाप सुना किन्तु कोई उत्तर न देकर मेरी बात साफ टाल गये। वह ऐसा अवसर था जब इन दो महान वैज्ञानिकों में से एक तो इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अवश्य ही आ सकता था।

रामन साहब के सम्बन्ध में एक बार एक बड़ी रोचक बात, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती रामन ने मुझे बतायी। रामन साहब ने अँग्रेजी भाषा में लिख रखा था, "जिन्हें विज्ञान में रुचि न हो वे कृपया कैम्पस में न आयें।" लेडी रामन ने बताया था कि जो व्यक्ति बेपढ़े-लिखे थे वे तो चले आते थे और पढ़े-लिखे लोग नहीं आते थे।

प्रसिद्ध उद्योगपति पदमपत सिंहानिया एप्लायड फिजिक्स में रिसर्च के लिए एक भवन बनवाना चाहते थे। भवन के निर्माण से पहले वे रामन साहब के लैब को देखने बेंगलोर गये थे। इस नई प्रयोगशाला का उद्घाटन देश के प्रथम प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने किया था।

बेंगलोर में जब 'इन्डियन एकेडेमी ऑव साइन्सेज' संस्था बनी तो इलाहाबाद में 'नेशनल एकेडमी ऑव साइन्सेज' अस्तित्व में आयी। एक बार इन दोनों ही वैज्ञानिक संस्थाओं का ज्वाइन्ट (संयुक्त) सेशन हुआ था।

एक बार जब मैं बेंगलोर गया तो रामन साहब के लिए दशहरी आम ले गया। उन्होंने आम ले लिया। रामन साहब हँसे और बोले, "यहाँ तो इससे भी अच्छे आम हैं।" रामन साहब के जन्म दिन के अवसर पर मैंने एक बार ताम्रपत्र ले जाकर उन्हें भेट किया और निवेदन किया, "आप अपने शोधपत्रों का संग्रह ग्रंथाकार छपवा लें।" रामन साहब हँसकर बोले, "मेरा अच्छा काम और लोगों ने पहले ही छपवा लिया। मैं 'बैंकरप्ट' हो गया हूँ।"

रामन साहब के शोधपत्रों का संग्रह उनके स्वर्गवास के दो दशक बाद प्रकाशित हुआ। रामन साहब अपने कृतित्व में अमर हैं। आज देश को आवश्यकता है रामन साहब जैसे तपोनिष्ठ, समर्पित वैज्ञानिकों की। रामन साहब से सम्बन्धित ढेरों स्मृतियाँ हैं जिन्हें कभी और सुनाऊँगा।

●●

(विज्ञान परिषद् में दिये गये व्याख्यान से)

पपीते में लिंग भेद : समस्या व समाधान

दर्शना नन्द

पपीते की बागवानी में सब से बड़ी समस्या लिंग भेद की होती है, जिसका फलत से सीधा सम्बन्ध रहता है। इनके पौधों में नर और मादा पौधे अलग-अलग होते हैं। फल केवल मादा पौधों पर ही लगते हैं। नर पौधों के फूल मादा पौधों के फूलों के गर्भाधान के लिए केवल परागकण सम्पूर्ति करते हैं तथा वे फल नहीं देते। अभी तक इसमें वानस्पतिक प्रसारण की कोई ऐसी विधि भी नहीं निकल पाई, जिससे पौधों के लिंग भेद व फलत सुनिश्चित हो सकें। इसी कारण पपीते के पौधे बीज द्वारा ही उगाने पड़ते हैं, जिनमें किस्मों के वास्तविक गुण सुरक्षित नहीं रह पाते।

वानस्पतिक प्रसारण की एक विधि कटिंग द्वारा अवश्य ही विकसित है, परन्तु यह बहुत ही छोटे पैमाने पर सम्भव है। कटिंग (कृन्तनें) उपलब्ध होना भी एक कठिन समस्या है। इसके मुख्य कारण निम्नवत् हैं :

(I) पपीते में प्रायः शाखें बहुत कम निकलती हैं, जो नहीं निकलने के बराबर ही होता है।

(II) शाखों की जो कृन्तनें प्रयोग की जाती हैं उनका आधार सहित होना आवश्यक होता है। इस कारण एक शाख को मुख्य तने से आधार सहित ही निकालना पड़ता है, जिस कारण एक शाख से एक कृन्तन प्राप्त हो पाती है।

नर-मादा पौधों की पहचान

पौधों में फूल और फल लगने के पूर्व नर या मादा पौधों को पहचानना सम्भव नहीं हो पाता। पौधशाला में केवल पौधों की बढ़वार से कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। एक साथ के लगाये गये पौधों में जो पौधे अधिक तेजी से बढ़ते हैं, उनके नर होने की सम्भावना अधिक होती है।

पपीते के पौधे में फूल, पत्तों के कक्ष में लगते हैं। पत्तों के कक्ष में निकलती हुई हल्के पीले रंग की पतली और लम्बी डण्ठलों पर यदि छोटे-छोटे क्रीम के रंग के नली नुमा फूल गुच्छों में लटकते हुए पाए जाएँ, तो समझना चाहिए कि वे पौधे नर हैं। नर पौधों के ये फूल लगभग 2.5 सेमी० लम्बे होते हैं। तने से निकलती और लटकती ये डण्ठलें लगभग एक मीटर लम्बी होती है।

मादा पौधों में तने से लगी हुई शिखा की ओर क्रीम रंग के मोटे और लगभग 2.5 सेमी० लम्बे फूल निकलते हैं। मादा फूल पाँच मोटी पंखुड़ियाँ होती हैं जो गर्भाशय को घेरे रहती हैं। फिर भी गर्भाशय स्पष्ट दिखायी देता है, जो छोटे से पपीते के आकार का होता है। यही गर्भाशय विकसित होकर बाद में फल का रूप धारण कर लेता है।

सी-67, गुरु तेग बहादुर नगर (करेली हाउसिंग स्कीम), इलाहाबाद-211016

फल का गूदा मोटा और पीले से लेकर गाढ़े नारंगी रंग का तथा उसके भीतर चौड़ा पाँच कोषों का खोखला स्थान छूटा हुआ रहता है। खोखले या खाली स्थान की दीवारों से काले रंग के लम्बाईयुक्त गोल पपीते के बीज लगे रहते हैं। ये बीज काली मिर्च के दानों की भाँति होते हैं।

पौधे के तने में एक स्थान पर साधारणत: तीन मादा फूल निकलते हैं। बीच वाला फूल माप में बड़ा होता है। उसके दोनों ओर के फूल कुछ छोटे होते हैं। कभी-कभी एक स्थान पर एक फूल भी निकलता है।

पपीते के कुछ पौधे द्विलिंगी भी होते हैं। द्विलिंगी पौधों में मादा पौधों की ही भाँति फूल आते हैं। अन्तर केवल यह होता है कि साधारण दशा में वे फूल मादा फूलों से कुछ पतले और लम्बे तथा नर फूलों से काफी मोटे होते हैं। अपेक्षाकृत ये फूल तने पर कुछ लम्बी डंठलों से निकलते हैं। द्विलिंगी फूल 3-4 सेमी० लम्बे होते हैं। ये फूल आधार की ओर नलीनुमा होते हैं। फिर धीरे-धीरे ऊपर की ओर चौड़े होते जाते हैं। इनकी पंखुड़ियाँ घुमावदार, मोटी और क्रीम के रंग की होती हैं।

पखुड़ियाँ अपने भीतर नर अंग (स्टेमेन्स) तथा लम्बी गर्भाशय को घेरे रहती हैं। द्विलिंगी पौधों से लम्बाई-युक्त बेलनाकार फल प्राप्त होते हैं। इन फलों का गूदा बहुत मोटा, बँधा हुआ नारंगी रंग का होता है। फल के भीतर का छूटा हुआ खोखला भाग बहुत कम होता है। इसमें बीज बहुतायत से भरे रहते हैं।

कभी-कभी द्विलिंगी पौधों में गर्भाशय मादा पौधों की भाँति ही होता है। परन्तु इनके नर अंगों की बनावट टेढ़ी-मेढ़ी रहती है, जो गर्भाशय से चिपके रहते हैं। इस कारण फल भी कुरूप हो जाते हैं। साथ ही साथ फलों में गहरी धारियाँ भी बन जाती हैं।

इनके अतिरिक्त पपीते में लिंग सम्बन्धी अन्य प्रकार के वर्ग भी पाए गए हैं :

नर फूलों के लटकते हुए गुच्छों में कभी-कभी एक या दो फूल द्विलिंगी भी निकल आते हैं। इस कारण ऐसे पौधों में भी छोटे-मोटे फल लटकते हुए दिखाई पड़ते हैं।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि नर पौधे जब पुराने हो जाते हैं तो उनमें द्विलिंगी फूल आने लगते हैं।

एक ही पौधे में मादा और द्विलिंगी फूल भी कभी-कभी आ जाते हैं, जिससे पौधे में भिन्न आकार के फल लगते हैं।

द्विलिंगी फूल के कुछ नर अंग (स्टेमेन्स) कभी-कभी मादा अंग में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार तैयार फल कुछ कुरूप हो जाते हैं। ये लिंग-परिवर्तन अकस्मात ही हो जाते हैं। लिंग असमानता या लिंग-परिवर्तन द्वारा प्राप्त फल आकार में असाधारण होते हैं।

समाधान

वर्तमान परिस्थितियों में लिंग भेद समस्या के समाधान के लिए बाग लगाते समय मुख्य स्थान पर एक-एक के बजाय तीन-तीन पौधे लगाना चाहिए। इस प्रकार यह लगभग निश्चित होता है कि उनमें कम से कम एक पौधा मादा अवश्य ही निकलेगा। तीनों पौधों में परस्पर कम से कम 15 सेमी० की दूरी अवश्य रखनी चाहिए। जब पौधों

में फूल आ जाएँ तो नर, मादा फूलों की पहचान करके एक स्थान पर केवल एक मादा पौधा छोड़ कर शेष निकाल देना चाहिए।

मादा पौधों में फल लगने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उनके आस-पास के क्षेत्रों में नर पौधे भी रहें, जिससे कि, मादा फूलों का परागण हो सके। पपीते में नर पौधों के पराग-कण मादा पौधों तक लगभग चार-पाँच किलोमीटर से वायु के द्वारा उड़ कर आते हैं।

फिर भी पपीते के उद्यान से नर पौधे निकालते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उद्यान में कुछ नर पौधे भी परागण हेतु छोड़ दिए जाएँ। यद्यपि नर पौधे कम रहने पर भी मादा पौधे फल जाते हैं, फिर भी अफलन के भय से बचने के लिए यह आवश्यक है कि उद्यान में कम से कम 10 प्रतिशत नर पौधे अवश्य रख लिए जाएँ।

चूंकि पपीते का प्रसारण बीज द्वारा ही किया जाता है तथा इसका पौधा भी एकलिंगी होता है, इसलिए इसकी किस्मों के मूल गुण पौधों में नहीं रुक पाते। पपीते में किसी किस्म के मूल गुण को बनाये रखना केवल उसी दशा में सम्भव हैं जबकि उसके आस-पास पपीते की अन्य किस्मों का लगाना बन्द कर दिया जाये। फिर भी अब कुछ किस्में ऐसी विकसित हो चुकी हैं, जिनमें कुछ या शत प्रतिशत द्विलिंगी फूल निकलते हैं, जो इस जटिल समस्या के निदान में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं।

कुर्ग हनी ड्यू

पपीते की किस्म 'हनी ड्यू' के बीजू पौधों में से एक द्विलिंगी पौधे का चयन फल शोध संस्थान चैथल्ली, कुर्ग में किया गया था। इस द्विलिंगी किस्म को 'कुर्ग-हनी-ड्यू' का नाम दिया गया। इसके पौधों के शत-प्रतिशत फूल द्विलिंगी होते हैं। अतः इनके फूलों में स्वयं सेंचन हो जाता है, जिसके द्वारा फल लग जाते हैं तथा इसके लिए किसी नर पौधे की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार इस किस्म के गुण भविष्य की पीढ़ियों में भी बराबर बने रहते हैं।

इसका फल लम्बाईयुक्त अण्डाकार तथा मध्यम से लेकर बड़े माप का होता है। फल की शिखा की ओर कुछ कम विकसित निपल होता है तथा शिखा की ओर गहरी और उभरी हुई धारियाँ होती हैं। गूदा मुलायम, मोटा बँधा हुआ और रसदार नारंगी रंग का, मीठा व स्वादिष्ट होता है। इसका बाग लगाने में एक स्थान पर एक पौधा लगाना ही पर्याप्त होता है।

कोएम्बेटूर-2 (सी ओ-2)

यह किस्म तमिलनाडु के कोएम्बेटूर से विकसित हुई है। इसके पौधे द्विलिंगी होते हैं। फल धारियों सहित अण्डाकार होते हैं। गूदा गुलाबी रंगयुक्त रसदार व स्वादिष्ट होता है। फल पौधे की 100 से 120 सेमी० की ऊँचाई से ही लगने लगते हैं। एक बार फल जाने के बाद पौधे की ऊँचाई 200 सेमी० तक रहती है। इसकी फसल तीन वर्ष तक ले सकते हैं।

पूसा डेलीशस

यह किस्म भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र पूसा (बिहार) से विकसित हुई। इसके शत-प्रतिशत पौधे फलने वाले होते हैं जिसमें मादा या द्विलिंगी फूल होते हैं। नर पौधे इस किस्म में निकलते ही नहीं हैं।

पौधे 50 सेमी० की ऊँचाई से ही फलने लगते हैं। एक बार फलने के बाद पौध की ऊँचाई 175 सेमी० हो जाती है। एक पौधे से लगातार तीन वर्ष तक भली भाँति फसल ले सकते हैं। एक स्थान पर एक पौधा लगाना पर्याप्त होता है।

वाशिंगटन

महाराष्ट्र से विकसित इस किस्म की पिछली पीढ़ियों में मूल गुण अन्य किस्मों से पृथक रखकर सुरक्षित किये गये थे। इस किस्म में शुद्ध गुण प्राप्त होने की सम्भावनाएँ अधिक रहती हैं। पूना के एक प्रयोग में इस किस्म में 60 प्रतिशत मादा, 20 प्रतिशत द्विलिंगी और 20 प्रतिशत नर पौधे पाये गये।

फल लम्बाईयुक्त गोलाकार व भार में 1½ से 2 किग्रा० का होता है। गूदा मीठा, स्वादिष्ट और नारंगी रंग का होता है। फल में डंठल की ओर एक बैंगनी रंग का घेरा बना रहता है। तने की गाँठें और पत्तों की डंठलें भी बैंगनी रंग की होती हैं।

सी ओ-1 (कोएम्बेटूर-1)

तमिलनाडु कृषि महाविद्यालय एवं शोध संस्थान, कोएम्बेटूर से विकसित इस किस्म में 60 प्रतिशत पौधे मादा और शेष नर पाये जाते हैं। इसके पौधे बौने होते हैं और 60 सेमी० की ऊँचाई से फलने लगते हैं।

फल मध्यम माप का गोलाकार और 1/2 किग्रा० भार का होता है। गूदा बँधा हुआ सुनहरे पीले रंग का सुवासयुक्त रसदार और स्वादिष्ट होता है। इस किस्म को विकसित करने के लिए 'राँची' किस्म के पौधों की छः पीढ़ियों तक अन्य किस्मों से पृथक रखना पड़ा, जिसके पश्चात् इसमें शुद्ध मूल गुण प्राप्त हो सके।

उपर्युक्त उभय लिंगों व मादा किस्मों के अतिरिक्त पपीते की अन्य अच्छी किस्में (यद्यपि एक लिंगी हैं)— हनीड्यू, राँची, सेलेक्शन न०-7, पेराडेनिया, फिलीपाइन्स, पूसा जाएण्ट, पूसा ड्वार्फ, पूसा नन्हा, सीलोन, सिंगापुर और बरवानी भी हैं। ●●

अकार्बनिक रसायन और रंगों की रंगीनियाँ

योगेन्द्र बहादुर सिंह "सागर मीरजापुरी"

रंगों का मानव जीवन के हर पक्ष से बड़ा ही रंगीन जुड़ाव रहा है। मानव-मनोविज्ञान को रंगों की पसन्द के आधार पर परखा जा सकता है। विभिन्न रंगों की अस्मिता ने ही जीवन को दिलचस्प बनाया है। रंगों की सत्ता व्यापक होने के साथ ही साथ वैज्ञानिक भी है। विज्ञान की कई शाखाओं ने रंगों के अध्ययन को आवश्यक समझा है। रसायन विज्ञान में भी रंगों की रंगीनियाँ वैज्ञानिक समीकरणों के साथ विद्यमान हैं। रंगों के रसायन-विज्ञान तथा रसायन-विज्ञान के रंगों का युगपत समीकरण हल करना रंगों के मर्म को महसूसने के लिए जरूरी है। आइये, अकार्बनिक रसायन में रंगों की रंगीनियों पर दृष्टिपात करें।

प्रवक्ता, के० एन० आई०, सुल्तानपुर-228118 (उत्तर प्रदेश)

लिटमस-पत्र

यह एक कागज का टुकड़ा होता है जो विशेष रासायनिक पदार्थ के पर्त को अपने स्पर्श-क्षेत्र में समाये हुए होता है। अम्लों तथा क्षारों की पहिचान हम लिटमस-पत्र द्वारा ही करते हैं। परीक्ष्य-द्रव में हम लिटमस पत्र को डुबोते हैं। यदि नीले पत्र का रंग लाल हो जाये तो समझिये कि द्रव अम्ल है और यदि लाल पत्र का रंग नीला हो जाये तो द्रव क्षार होगा।

लैपिस लेजुली (Lapis Lazuli)

यह सोडियम एल्यूमिनियम सिलिकेट है। इसमें अल्प मात्रा में गंधक भी होता है। इसका रंग सुन्दर नीला होता है। भारत में लैपिस लेजुली को 'लाजवन्ती' के नाम से जाना जाता है। इससे नीले रंग का काम लिया जाता है।

अल्ट्रामेरिन

इसे कृत्रिम लैपिस लेजुली भी कहते हैं। यह एक महत्वपूर्ण नीला रंग है। अल्ट्रामेरिन का उपयोग कपड़े धोने में (नील के स्थान पर), नीला वार्निश बनाने में, हल्के नीले कागज बनाने में तथा कपड़े की छपाई में होता है। इस नीले अल्ट्रामेरिन में शुष्क क्लोरीन (गैस) प्रवाहित करें तो यह बैंगनी रंग का हो जाता है। अल्ट्रामेरिन बनाने के लिए चीनी मिट्टी, रोडा राख, गंधक व चारकोल के मिश्रण को एक विशेष प्रकार की "आपवृत्त" भट्टी में रखकर गर्म करते हैं। पहले सफेद अल्ट्रामेरिन बनता है। यह हवा के सम्पर्क में आने पर हरा हो जाता है। इसमें यदि थोड़ी-सी गंधक मिलाकर गर्म करें तो नीला अल्ट्रामेरिन बनेगा।

रंगहीनता में रंग भरना

रंगों के रंग को किसी अन्य रंग में भरना तो आसान है लेकिन रंगहीनता में रंग घोलना एक दुरूह कार्य है। लेकिन सोडियम हाइड्रॉक्साइड (NaOH) के लिये यह कार्य आसान है। वह फिनॉफ्थेलीन के रंगीन विलयन को गुलाबी कर देता है। यह रासायनिक अभिक्रिया रसायन-वैज्ञानिकों के लिये भले ही मामूली बात हा लेकिन भावनाओं के वैज्ञानिकों के लिये यह बहुत ही रोचक तथा महत्वपूर्ण घटना है। सोडियम हाइड्रॉक्साइड तथा फिनॉफ्थेलीन दोनों ही रंगहीन हैं। किसी के रंगहीन जीवन को ऐसे व्यक्ति द्वारा गुलाबी कर देना, जिसका जीवन खुद ही रंगहीन है, क्या जीवन दर्शन के उत्कर्ष को रेखांकित नहीं करता ?

अकार्बनिक तत्वों का रंगीला नामकरण

रसायन-विज्ञान में बहुत से तत्वों के नामों का आधार ही 'रंग' है। उदाहरण के लिये, आयोडीन (I) का नाम फ्रेंच शब्द 'आयोड्स' के आधार पर हुआ है। आयोड्स का मतलब—'बैंगनी की तरह' होता है। फ्रेंच शब्द 'इरीडिस' का अर्थ इन्द्र धनुष होता है। इन्द्रधनुष हॉलाँकि किसी रंग का नाम नहीं है लेकिन फिर भी रंगों के हृदय का राजसिंहासन बनने लायक इन्द्रधनुष से बेहतर और कोई नहीं है। इस शब्द के आधार पर इरीडियम (Ir) तत्व का नामकरण किया गया है। जिन अन्य तत्वों का नामकरण रंगों के आधार पर किया गया है, उनकी सूची निम्न है—

तत्व का नाम	रासायनिक संकेत	शब्द	भाषा	अर्थ
बिस्मथ	Bi	बीजेमासे	जर्मन	सफेद मात्रा
क्लोरीन	Cl	क्लोरस	फ्रेंच	हल्का हरा
क्रोमियम	Cr	क्रोमा	फ्रेंच	रंग
सीजियम	Cs	सीजियस	फ्रेंच	नीला
रूबीडियम	Rb	रूबीडस	फ्रेंच	लाल
प्रोमीथियम	Pm	प्रोमीथियस	फ्रेंच	हरा टाइटन
इन्डियम	In	इन्डिकम	फ्रेंच	इन्डिगो

रासायनिक हरियाली एवम् स्थायित्व

तांबे का एक यौगिक, कॉपरनाइट्रेट $[Cu(NO_3)_2]$ अस्थाई पदार्थ होता है। इस अस्थाई पदार्थ की एक खासियत होती है। यदि इसे हरे रंग के विलयन में रख दें तो यह स्थाई हो जाता है। इसका मतलब तो यह हुआ कि हरा रंग स्थायित्व देता है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। मैंग्नीज का एक यौगिक, MnO (मैग्नस ऑक्साइड) हरे रंग का होते हुए भी अस्थाई होता है। $Fe(NO_3)_1 . 6 H_2O$ (फेरस नाइट्रेट) के क्रिस्टल भी हरे रंग के और अस्थाई होते हैं। इससे यह साबित होता है कि हरा रंग स्थायित्व प्रदान करे—यह जरूरी नहीं। परस्पर विरोधी ये उदाहरण रसायन-विज्ञान में रंगों के माया-बाजार की जानकारी में सहज ही दिलचस्पी पैदा करते हैं।

कार्बन मोनोऑक्साइड की विषैली रंगीनी

कार्बन और ऑक्सीजन से मिलकर बनने वाली गैस कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) बहुत ही विषैली होती हैं। इस जहरीली गैस के सम्बन्ध में सबसे मजेदार बात यह है कि इसके कारण दम घुटने से मरने वाले व्यक्ति के मुख पर गुलाबी आभा दिखाई पड़ती है।

कुछ रासायनिक रंग

प्रुसियन ब्ल्यू—$Fe_4[Fe(CN)_6]_3$ फेरिक फेरोसाइनाइड

पेरिस ग्रीन—$Cu[C_2 H_3O_2] . Cu_3 (As O_2)_2$

ग्यूग्नेट्स ग्रीन—$Cr_2 O_3 . 2 H_2O$

टर्नब्ल्यू—$Fe_3[Fe(CN)_6]_2$ फेरस फेरी साइनाइड

विलियमसंस वॉयलेट – $(KFe''') Fe'''(CN)_6 . H_2O$

थेनार्ड्स ब्ल्यू—$CoO . Al_2 O_3$ कोबाल्ट एल्यूमिनेट

फैसेल्स यलो—$Pb Cl_2 . 7 Pb O$

रीमैन्स ग्रीन—$Co O . ZnO$ कोबाल्ट जिंकेट

शीलेज ग्रीन—$CuH . AsO_3$ क्यूप्रिक आर्सीनेट

कुछ रंगीले रासायनिक पदार्थ

व्हाइट मेटल—Sn 82%, Sb 12%, Cu 6%
व्हाइट विट्रीऑल—$Zn SO_4 . 7 H_2O$
व्हाइट स्प्रिट—150°C से 200°C उबाल परिधि वाला पेट्रोलियम
व्हाइट कॉपर=जर्मन सिल्वर
ग्रीन विट्रीऑल—$Fe SO_4 . 7 H_2O$ हरा कसीस
ब्ल्यू विट्रीऑल—$Cu SO_4 5 H_2O$ नीला थोथा, तूतिया

ऑक्सीजन और रंग

ऑक्सीजन से तो आप सभी लोग परिचित ही होंगे। यह जीव के जीवन की धुरी होता है। हम साँस द्वारा जो वायु फेफड़ों में ले जाते हैं उसमें ऑक्सीजन की मात्रा सबसे अधिक होती है। ऑक्सीजन तत्व को आवर्त सारणी के छठें समूह में रखा गया है। ऑक्सीजन की अस्मिता ठोस, द्रव तथा गैस तीनों अवस्थाओं में बनी रहती है। ठोस ऑक्सीजन का रंग नीला-श्वेत होता है, द्रव ऑक्सीजन नीलिमा लिये हुए होता है तथा गैस ऑक्सीजन रंगहीन होता है। HClO विभक्त होकर नवजात (तुरन्त का पैदा हुआ) ऑक्सीजन देता है जो रंगीन पदार्थों से संयोग करके रंगहीन यौगिक बनाता है।

ओजोन और रंग

शौनबीन नामक रसायनज्ञ ने सन् 1840 में ओजोन नामकरण किया। ओजोन ग्रीक भाषा का शब्द है तथा इसका अर्थ होता है—'मैं सूंघता हूँ।' सन् 1866 में **सोरटे** ने इस पदार्थ का रासायनिक सूत्र O_3 दिया। वायु में ओजोन बहुत कम मात्रा में होता है। 10^8 भाग वायु में एक भाग ओजोन। ओजोन की यह थोड़ी मात्रा बड़ी ही उपयोगी होती है। वायुमण्डल के चारों ओर इसका हल्का पर्त सूर्य से चली मानव को क्षति पहुँचाने वाली किरणों को रोकने में रक्षा-कवच का काम करता है। परन्तु दुर्भाग्य तो यह है कि प्रदूषण के कारण ओजोन की पर्त क्षीण होती जा रही है।

ओजोन गैस का रंग हल्का नीला होता है। यह मछली की तरह महकती है। द्रव रूप में इसका रंग गाढ़ा नीला होता है तथा ठोस रूप में बैंगनी। ओजोन का उपयोग तेल, शक्कर, पत्ती आदि का रंग उड़ाने में भी किया जाता है। ओजोन की पहिचान करने के लिए 'बैंजिडीन' तथा 'टेट्रामिथिल भस्म' आदि कार्बनिक पदार्थों का उपयोग करते हैं। इनसे भीगा कागज ओजोन के सम्पर्क में आकर क्रमशः बैंगनी अथवा भूरे रंग का हो जाता है।

हाइड्रोजन परॉक्साइड के रंग

यह एक रंगहीन, गंधहीन गाढ़ा द्रव होता है। खुद तो यह रंगहीन होता है लेकिन इसका हल्का-सा प्रयोग तैल-चित्रों के रंगों को स्थायित्व प्रदान करता है। **थेनार्ड** (1818) नामक वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम इसकी खोज की थी। इसका रासायनिक सूत्र H_2O_2 है। सोडियम परॉक्साइड ($Na_2 O_2$) को बर्फ से ठण्डे किये गये जल में डालने पर यह प्राप्त होता है :

$$Na_2 O_2 + 2 H_2O \rightarrow 2 Na OH + H_2 O_2$$
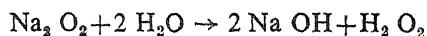
रेशम, चमड़ा, बाल तथा हाथी दाँत आदि के विरंजक के रूप में इसका इस्तेमाल होता है। रंगों की माया से घिरे इस पदार्थ की पहचान मंभी रंगों की भूमिका है। हाइड्रोजन परॉक्साइड, पोटैशियम परमैंगनेट के अम्लीय विलयन को रंगहीन कर देता है तथा टाइटेनियम ऑक्साइड के विलयन को नारंगी रंग का बना देता है। यही $H_2 O_2$ की पहिचान है।

धातु-ऑक्साइडों के रंग

किसी धातु विशेष को ऑक्सीजन की प्रचुर मात्रा में जलाने पर उस धातु का ऑक्साइड प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, CaO कैल्शियम का ऑक्साइड है। क्षारीय धातुओं तथा क्षारीय मृदा धातुओं के ऑक्साइड प्रायः श्वेत चूर्ण के रूप में प्राप्त होते हैं लेकिन भारी धातुओं (जैसे : जिंक, निकिल, लेड, कॉपर, लोहा आदि) के ऑक्साइड प्रायः रंगीन होते हैं। यह रंग उनके कणों के आकार के ऊपर निर्भर रहता है। उदाहरण के तौर पर Cr_2O_2 साधारण रूप से कुछ भूरापन लिए कुछ हरा होता है जबकि CrO_3 के क्रिस्टल काले होते हैं। MnO_2, $Fe_3 O_4$, CoO_4, CuO आदि ऑक्साइड भी काले होते हैं। $Pb O_2$ भूरा, SnO लाल तथा $Al_2 O_3$ सफेद होता है। मजे की बात तो यह है कि कुछ ऑक्साइडों को गरम करने पर उनके रंग बदल जाते हैं। जैसे—

ऑक्साइड	ठण्डा	गर्म
ZnO	सफेद	पीला
Cr_2O_3	हरा	भूरा
NiO	पीत-हरा	पीला
MnO	हरा	पीला
$Mn_3 O_4$	भूरा	काला
PbO	पीला	लाल
$Pb_3 O_4$	रक्तिम लाल	बैंगनी

धातु-हैलाइडों के रंग

फ्लोराइड (F), क्लोराइड (Cl), ब्रोमाइड (Br) तथा आयोडाइड (I) को संयुक्त रूप से हैलाइड कहते हैं। F^-, Cl^- तथा Br^- आयन रंगहीन होते हैं। संक्रमण तत्वों (जैसे—जिंक, कैडमियम तथा पारा) के हैलाइड यौगिक रंगीन होते हैं। इन यौगिकों में जल-योजन की क्षमता होती है। जल योजित होने के बाद इनका रंग बदल जाता है। उदाहरणार्थ—

यौगिक	अनार्द्र	आर्द्र
$NiCl_2$	सुनहला	$NiCl_2 . 6 H_2O$ पीत-हरा $NiCl_2 . 2 H_2O$ हरा
$CoCl_2$	नीला	$CoCl_2 . H_2O$ बैंगनी

$CoCl_2$ विलयन सामान्य रूप से गुलाबी होता है लेकिन हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCl) के आधिक्य में नीला हो जाता है। वनस्पति-विज्ञान में वाष्पोत्सर्जन के परीक्षण के लिए कोबाल्ट क्लोराइड-पत्र का उपयोग करते हैं। धातु आयोडाइडों का रंग मुख्यतः आयन के कारण होता है। कुछ आयोडाइड यौगिकों का रंग निम्न है—

AgI-हल्का पीला, CuI-हल्का पीला, PbI_2-पीला चमकदार, SnI_2-नारंगी, HgI_2-लाल चमकदार
BiI_3-भूरा

धातु सल्फाइडों के रंग

धातु और गंधक (सल्फर : S) के संयोग से धातुओं के सल्फाइड यौगिक बनते हैं। उदाहरणार्थ ताँबा (Cu) और गंधक (S) के संयोग से ताँबे का सल्फाइड ($\overline{CuS}$) बनेगा। भारी धातुओं के सल्फाइड रंगीन हुआ करते हैं तथा जल में अविलेय होते हैं। कुछ धातु-सल्फाइडों के रंगों के विवरण निम्नलिखित हैं—

CuS (काला), ZnS (सफेद), CdS (पीला), HgS (काला), SnS (भूरा), SnS_2 (पीला), GeS (भूरा लाल), GeS_2 (सफेद), PbS (काला), As_2S_3 (पीला), As_2S_5 (पीला), Sb_2S_3 (नारंगी), Sb_2S_5 (नारंगी), Bi_2S_3 (भूरा), MnS (हल्का भूरा), CoS (काला), NiS (काला)।

संकीर्ण यौगिकों के रंग

संकीर्ण यौगिक अधिकतर रंगीन होते हैं। उदाहरणार्थ, $CoCl_3 . 4NH_3$-हरा, $[Cr(H_2O_6)]Cl_3$-बैंगनी, $Cu(NH_3)_4(OH)_2$-गहरा नीला आदि। अपवाद के रूप में हम संकीर्ण यौगिक $Cd(NH_3)_4(OH)_2$ को ले सकते हैं जो रंगहीन होता है। ●●

पर्यावरण की त्रासदी और हम

डॉ० अजय श्रीवास्तव

अनियोजित औद्योगिकीकरण, गुणोत्तर श्रेणी में बढ़ती हुई जनसंख्या की माँग को पूरा करने के लिए अविवेकपूर्ण विधि से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन आदि ने हमारे प्राकृतिक पर्यावरण को बुरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया है। अब प्रकृति मानव समाज के लिए वरदान कहाँ सावित हो रही ? आज हमारे समक्ष गम्भीर 'पारिस्थितिकीय संकट' (Ecological crisis) पैदा :· गया है। सन् 1984 में भोपाल स्थित बहुराष्ट्रीय कम्पनी के कीटनाशी संयंत्र से रिसी जहरीली गैस 'मिथाइल आइसोसाइनेट' के कारण तीन हजार से भी अधिक लोगों की मौत एवं 1986 में सोवियत रूस में चेर्नोबिल में परमाणु भट्ठी विद्युत् संयंत्र से हुई दुर्घटना से विनाश, प्रकृति से छेड़-छाड़ का ही तो प्रतिफल है। इसी साल (1991) के अप्रैल माह में बांग्लादेश में समुद्री तूफान से चटगाँव के दक्षिण-पूर्वी तटीय जिलों में तकरीबन 5 लाख से भी ज्यादा लोगों का काल के गाल में समा जाना प्रकृति के प्रकोप का सबसे ताजा उदाहरण है। बाद में समुद्री चक्रवात से दक्षिणी समुद्री जिलों के निचले हिस्सों में मरने का क्रम जारी है। एक करोड़ से भी अधिक लोग तूफान की विभीषिका से प्रभावित हुए। इन भयावह त्रासदियों के मूल में छिपी है हमारी भोग-लिप्सा। सच तो यह है कि भौतिकवादी संस्कृति ने इस सच्चाई को नेपथ्य में ही रख दिया कि हमारा अस्तित्व प्राकृतिक सामंजस्य एवं पर्यावरण संरक्षण के मूल में समाहित है। फिर भी पर्यावरणविदों, प्रकृति प्रेमिओं ने पर्यावरण के भावी

भू-विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

स्वरूप पर समय-समय पर अपनी चिन्ता प्रकट की है। 1972 में स्टाकहोम में संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में 'मानव-परिवेश' पर एक सभा हुई जिसमें समूची दुनिया में पर्यावरण-प्रदूषण के बढ़ते खतरों को दृष्टिगत रखते हुए प्रत्येक वर्ष 5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' मनाने की बात कही गयी। भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व० इंदिरा गाँधी ने हेलसिंकी सम्मेलन में पर्यावरण को प्रदूषणमुक्त कराने की आवश्यकता पर बल दिया था। हमारे प्राचीन मनीषी पर्यावरणके प्रति अति जागरूक थे। उन्होंने पर्यावरण संरक्षण के प्रति अपनी भावनाओं को विभिन्न धर्मग्रन्थों में रेखांकित किया है। वे सही मायने में पर्यावरणविद् ही तो थे। उनकी सोच रही कि मानव जीवन एवं पर्यावरण के मध्य स्थापित सन्तुलन में व्यतिक्रम सम्पूर्ण जीवन प्रक्रिया को अस्त-व्यस्त कर देता है। पृथ्वी को माता सदृश व्यवहार करने की सीख दी; 'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथ्व्याः'। कालिदास ने अपनी कृति 'कुमारसम्भव' में पृथ्वी को मानदण्ड व हिमालय को देवतात्मा कहकर पुकारा है, जो उनके पर्यावरण के प्रति गहरे सम्मान भाव को प्रकट करता है :

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराज।
पूर्वापरौ तोयनिधी विगाह्न स्थितः
पृथिव्या इव मानदण्ड ।।

हमारे पूर्वजों ने सर्वत्र शान्ति की बात कही :, पृथ्वी, आकाश, अन्तरिक्ष व जीव-जन्तुओं में,

द्यौः शान्तिः अन्तरिक्ष शान्तिः, पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः, शान्तिः वनस्पतयः शान्ति विश्वेदेवाः, शान्तिर्ब्रह्त शान्ति सर्वे शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

जहाँ एक ओर विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में होने वाले प्रयोगों के फलस्वरूप हमारे जीवन-स्तर में पर्याप्त सुधार हुआ है और आर्थिक प्रगति के सन्दर्भ में हमने लम्बी छलाँगें लगायीं वहीं दूसरी ओर 'पर्यावरण प्रदूषण' गम्भीर संकट के रूप में हमारे सम्मुख आ खड़ा है। जल, वायु, मृदा, ध्वनि-प्रदूषण, वायुमंडल में निरन्तर हानिकारक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि, 'ग्रीन हाउस इफेक्ट', ओजोन-पर्त का क्षय, अम्लीय वर्षा, एवं जलवायु का बदलना आदि को हम 'वैज्ञानिक व तकनीकी संस्कृति' की कोख से उपजा तथा कथित 'उपहार' मान सकते हैं।

राष्ट्रीय पर्यावरण इंजीनियरिंग एवं अनुसन्धान संस्थान (National Enviromental Engineering Research Institute) नीरी, नागपुर के वैज्ञानिकों के अनुसार उत्तर में डल झील से दक्षिण में चालियर व पेरियार नदियों तक, पूरब में दामोदर से लेकर पश्चिम में थाना खाड़ी तक जल प्रदूषण की स्थिति अति शोचनीय है। घरेलू कूड़े-कचरे, उद्योगों के उत्सर्जित पदार्थ, मृत जीव-जन्तुओं की लाशों, रेडियोधर्मी कारकों एवं हानिकारक रासायनिक पदार्थों से निजात पाने के लिए नदियों को सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया। अनेक विषैले व जानलेवा अपशिष्ट, कीट-नाशक पदार्थ व पेस्टिसाइड जैसे डी० डी० टी० (डाइक्लोरो-डाइफिनाइल ट्राइक्लोरोइथेन) व आरगैनो क्लोरीन का नदियों के अवसाद (Sediments=मिट्टियों) में जमाव व फिर अनेक माध्यमों द्वारा मानव व जीव-जन्तुओं के शरीर में प्रवेश कर अनेक रोगों को पैदा करने का कारण बना है। इन प्रदूषक कारकों से न केवल नदियों के जल के मानक भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणधर्मों में अप्रत्याशित परिवर्तन हुआ है अपितु जलचरों की संख्या पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। कुल मिलाकर जल में घुलित शुद्ध ऑक्सीजन (डी० ओ०=Dissolved Oxygen) की मानक मात्रा

(4-6 मिलीग्राम/लीटर) पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा है। इसके साथ ही हानिकारक जैवरासायनिक ऑक्सीजन (बी० ओ० डी=Biochemical Oxygen Demand) की मात्रा बढ़ रही है। प्रदूषित जल के उपयोग ने हमें अनेक बीमारियों का तोहफा दिया है। जल में घुली आर्सेनिक की बढ़ी मात्रा (मानक मात्रा से) कैंसर, कैडमियम किडनी रोग, सिल्वर लीवर व फेफड़े के रोग, फ्लोराइड दाँतों की बीमारियों जैसे फ्लूओरोसिस, मैंगनीज नपुंसकता व स्मरण शक्ति में ह्रास, आयरन उल्टी व मरकरी दृष्टि दोष, कुंदता एवं श्रवण शक्ति के ह्रास के लिए उत्तरदायी हैं। उपलब्ध पेय जल आज इतना अधिक प्रदूषित है कि विश्व में लगभग डेढ़ करोड़ बच्चे 5 वर्ष की आयु के पूर्व ही काल के गाल में समा जाते हैं, जिनमें से एक तिहाई की मौत अतिसार रोग से होती है। 'यूनीसेफ' के अनुसार निर्धन देशों के लगभग एक अरब बच्चों को शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं है। भारत में भी उपलब्ध जल का 70 प्रतिशत भाग अपेय है फिर भी मनुष्य इसे पीने को विवश है। उदाहरणार्थ हम गंगा जल को ही लें। वैज्ञानिक जाँच के फलस्वरूप इस जल में हैजा, अतिसार के विषाणु, आँव आमातिसार के सिस्ट, फफूँदी, पीलिया, गेस्ट्रो के विषाणु मिले हैं—तट पर शवदाह की क्रिया सम्पन्न होती है फलतः जल का तापक्रम 5-6° सेन्टीग्रेड बढ़ता है, जिसके चलते जल से 30-35 प्रतिशत ऑक्सीजन निकल जाती है जो जल की जीवनदायिनी शक्ति है। विभिन्न नदियों की कमोबेश यही स्थिति है। इन नदियों का पृष्ठीय जल ही नहीं, भौम जल (Ground water) भी दिन-प्रतिदिन दूषित होता जा रहा है। यदि भौम जल के बढ़ते प्रदूषण को न रोका गया तो आगामी शती में हमें भयावह स्थितियों का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि भौम जल का उपचार असम्भव नहीं पर अति दुरूह है। विभिन्न देशों की सरकारों ने जल प्रदूषण की समस्या पर ध्यान दिया है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस समस्या को गम्भीरता से लिया और 1981-90 को 'अन्तर्राष्ट्रीय जल आपूर्ति व स्वच्छता दशक' घोषित किया था। हमारे देश में भी इस समस्या के समाधान हेतु 'टेक्नोलॉजी मिशन' (Technology Mission) की स्थापना की गयी है।

सीबेज एवं विभिन्न औद्योगिक उच्छिष्ट में से नदियों में जाने वाले पदार्थों में ऐसे तत्वों की अधिकता होती है जो जल में अघुलनशील (Insoluble) होते हैं, तली (bottom) में बैठ जाते हैं एवं अवसाद (सेडिमेंट्स) में समाविष्ट हो जाते हैं। अवसादों के मृत्तिका खनिज (क्ले मिनरल) जैसे केओलेनाइट, इलाइट, क्लोराइट, मॉनटमोरिलोनाइट जल में विद्यमान विषाक्त एवं हानिकारक धातुओं व पदार्थों को उपयुक्त भौतिक, रासायनिक व जैविक परिस्थितियों में अवशोषित कर लेते हैं। इस प्रकार जल की विषाक्तता (टॉक्सिसिटी Toxicity) कम हो जाती है। और जलीय माध्यम में अवसाद अप्रदूषक (Scavenger) के रूप में कार्य करते हैं। लेकिन अवशोषित पदार्थ व भारी धातुएँ जलीय माध्यम के भौतिक, रासायनिक गुणधर्मिता यथा पी० एच० (हाइड्रोजन आयन सान्द्रता) रेडाक्स स्थिति (ई० एच-पी० एच०) व लवणीयता आदि में परिवर्तन होने पर अवसाद से जल में जा सकते हैं। इस प्रकार जल में विषाक्त धातुओं की मात्रा बढ़ सकती है जो मानव स्वास्थ्य व जलीय जीव-जन्तुओं के लिए हानिकारक है। ऐसी स्थिति में जलीय अवसाद (Aquatic Sediments) प्रदूषक (Pollutant) के रूप में कार्य करता है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भू-विज्ञान विभाग के प्रोफेसर महाराज नारायण मेहरोत्रा, डॉ० अजय श्रीवास्तव एवं डॉ० सच्चिदानन्द सिंह ने मिरजापुर, वाराणसी, इलाहाबाद, सैदपुर, गाजीपुर के गंगा अवसाद में भारी धातुओं की मात्रा ज्ञात की। परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि भारी धातुओं यथा कॉपर, लेड, क्रोमियम, निकेल, जिंक, मरकरी, कोबाल्ट व यूरेनियम की कमाधिक मात्राएँ सभी नमूनों में हैं। अनेक स्थानों पर धातुओं का संकेन्द्रण उनके मानक मान (Threshold value) औसत रोल मान से अधिक है। इन धातुओं की मात्रा की विवेचना उनकी स्थिति,

कण साइज, खनिज संगणक, कार्बोनेट व जैविक पदार्थ से की गयी। मिर्जापुर में चौबे घाट, नार घाट, सुन्दर घाट, ओलियर घाट, कचहरी घाट, पिपराडाह, गिगराँव व भोज कोल्हुआ के अवसाद अधिक प्रदूषित हैं। वाराणसी परिक्षेत्र में घुरहा नाला, त्रिलोचन घाट के विपरीत तट, अस्सी घाट, हरिश्चन्द्र घाट, प्रह्लाद घाट, मुख्य सीवर आदिकेश्वर घाट (वरुणा संगम) का अवसाद प्रदूषित है। इसी प्रकार सैदपुर एवं गाज़ीपुर क्षेत्रों में गोमती नदी के संगम के निकटवर्ती अवसाद, पक्का घाट (जहाँ मुख्य सीवर मिलता है), रंग महल घाट के विपरीत तट, फुललरिया गाँव के विपरीत तट एवं गोरा बाजार का नाला, जिसके द्वारा सिहोरी चीनी मिल व नन्दगंज डिस्टीलरी का उच्छिष्ट गंगानदी में लाया जाता है, अकीम कारखाना नाला संगम, कलेक्टर घाट (जहाँ मुख्य सीवर नदी से मिलता है) क्षेत्र के निकटवर्ती अवसाद भी सर्वाधिक प्रदूषित (Polluted) हैं। यह तो सर्वविदित है कि अवसाद जलीय माध्यम (Aquatic Eco-system) का अभिन्न (Integral & Inseparable) अंग है, फिर भी न तो नदी प्रबन्धन की कार्य योजना के अन्तर्गत जल संरक्षण कार्यक्रम (Water Conservation Programme) में अवसादीय अध्ययन को प्रमुखता दी गयी है और न ही पर्यावरण प्रदूषण के अन्तर्गत अवसाद अध्ययन एवं अवसाद प्रदूषण की कहीं चर्चा ही विशेष रूप से हुई है। अवसाद के अध्ययन पर भी प्रकाश डाला जाना चाहिये।

औद्योगिक कस्बों, भीड़-भाड़ वाले क्षेत्रों में तो वायु प्रदूषण की समस्या जटिलतम होती जा रही है। कारखानों की चिमनियों से उत्सर्जित धुँआ, वाहनों से उगले धुँए में सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन, कार्बन डाइऑक्साइड, भारी जहरीले धातुओं, राख आदि अनेक हानिकारक पदार्थ विभिन्न रोगों के जनक हैं। विभिन्न स्रोतों जैसे कल-कारखानों, ताप विद्युत् गृहों, सीमेंट निर्माण इकाई, उर्वरक के कल-कारखाने, तेल शोधक कारखाने, खनन उद्योग, कोक भट्ठियाँ, खनिज तेलों के प्रज्वलन आदि से वायुमण्डल बुरी तरह प्रभावित है। भारतीय मौसम विज्ञान की एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले 60 वर्षों में कोयला व खनिज तेलों के जलने से ही वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 13 प्रतिशत बढ़ी है, फलतः इसके तापक्रम में भी वृद्धि हुई है। वैज्ञानिकों का कहना है कि वायुमण्डल में कार्बन-डाइऑक्साइड का सान्द्रण दस लाख कणों में 350 हो गया है जबकि 19वीं शती के मध्य में जब अमेरिका में औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ, तब इसका सान्द्रण केवल 280 था। भारत सरकार ने 1984 में 'वायु प्रदूषण नियन्त्रण कानून' की स्थापना कर हानिकारक तत्वों की सर्वाधिक मात्रा वायुमंडल में निर्धारित की है, पर वांछित लक्ष्य की प्राप्ति न हो सकी है। इसके लिए औद्योगिक इकाइयों के इर्द-गिर्द हरित पट्टिका की स्थापना का भी सुझाव रखा गया है।

सूर्य की घातक पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी पर आने से रोकने में ओजोन परत की महत्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन वायु प्रदूषण के कारण स्ट्रैटोस्फियर (समताप मण्डल) में ओजोन परत धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है। ओजोन कवच को नष्ट करने में नाइट्रिक ऑक्साइड एवं क्लोरीन ऑक्साइड का प्रमुख योग है। घातक पराबैंगनी किरणों की अधिक बौछार सहने से त्वचा की कोशिकाएँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं एवं सूक्ष्म रक्त-वाहिकाएँ फूल जाती हैं। इन किरणों के और भी दुष्प्रभाव हैं। आँखों पर भी गम्भीर प्रभाव पड़ता है। ये किरणें कैंसर का भी कारण बनती हैं। मैलिग्नेंट-मेलेनोमा के कारण रोगियों की कष्टप्रद मृत्यु होती है। ऐसा अनुमान है कि इन घातक पराबैंगनी किरणों के दुष्प्रभाव से समुद्रीय सूक्ष्मजीवाणु नष्ट हो सकते हैं, फलतः समुद्र की खाद्य-शृंखला भी असन्तुलित हो सकती है। ओजोन परत के नष्ट होने से ध्रुवीय प्रदेशों पर कुप्रभाव पड़ रहा है। यदि ऐसी स्थिति बनी रही तो अगले 70 वर्षों में ओजोन परत लगभग 10 प्रतिशत तक क्षतिग्रस्त हो सकती है। आर्कटिक व अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन छिद्र अमेरिका के क्षेत्रफल के तुल्य था। 1987 में तो यह पूरे अंटार्कटिका पर छा गया और 1988 व 1989 में इसका विस्तार

निरन्तर बढ़ता गया। अंटार्कटिका के ऊपर का छिद्र, आर्कटिक के ओजोन छिद्र की तुलना में 5 गुना अधिक बड़ा है। यही नहीं, वायुमंडल में कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा में बढ़ोत्तरी से तापक्रम बढ़ रहा है। अनुमानतः पिछले 50 वर्षों में वायुमंडलीय तापक्रम में 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हो चुकी है। कोई 2050 तक 'ग्रीन हाउस प्रभाव' के कारण तापक्रम में 4 से 5 डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि हो सकती है परिणामस्वरूप आर्कटिक व अंटार्कटिका के विशाल हिमखण्डों के पिघलने से समुद्रतटीय महानगरों को सबसे अधिक खतरा होगा। 'ग्रीन हाउस प्रभाव' का कारण क्लोरो-फ्लोरो कार्बन (सी० एफ० सी०) गैस है, यह रेफ्रिजरेटरों व गाड़ियों में प्रयोग होने वाले एयरकन्डीशनरों में प्रयुक्त होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार सी० एफ० सी० का 'ग्रीन हाउण प्रभाव' में सर्वाधिक (90 प्रतिशत तक) योगदान है। भारत में वायु प्रदूषण की चपेट में मुख्यतः कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, कानपुर आदि महानगर हैं। भोपाल गैस कांड की त्रासदी को क्या कभी भुलाया जा सकेगा ? 2 और 3 दिसम्बर 1984 की काली रात को बहुराष्ट्रीय कम्पनी यूनियन कार्बाइड के कीटनाशी रसायन बनाने के गैस प्लान्ट से 'मिक' (मिथाइल आइसोसाइनेट) का रिसाव हुआ, कोई 3000 से अधिक लोग मारे गये और 2 लाख लोग शारीरिक अपंगताओं के शिकार हुए। 'मिक' गैस का असर वायुमंडल में दीर्घ अवधि तक बना रहेगा। रूस में चेर्नोबिल परमाणु संयंत्र में घटित दुर्घटना के कारण अगले 70 वर्षों में 7000 व्यक्तियों की मृत्यु मात्र कैंसर के कारण ही होगी। सीमेंट व चूने के उद्योगों से निरन्तर उत्सर्जित व धूल-कणों में मैंगनीज, लोहा व कैल्सियम के ऑक्साइड रहते हैं जो फेफड़ों में प्रवेश कर अनेक रोग यथा क्षय, दमा ब्रांकायटिस आदि पैदा करते हैं। धूल में उपस्थित कार्बन मोनोऑक्साइड रक्त के "ऑक्सीजन" व "हीमोग्लोबिन" की मात्रा को कम कर देती है।

अम्लीय वर्षा हमारे पर्यावरण-असन्तुलन की एक प्रमुख समस्या के रूप में उभर रही है। वर्षा का जल कार्बनडाइ ऑक्साइड की घुलनशीलता के कारण कुछ सीमा तक अम्लीय प्रकृति का होता है। पर वर्तमान औद्योगिकी-करण की प्रक्रिया के कारण सल्फर एवं नाइट्रोजन के ऑक्साइड वर्षा के जल में घुलकर इसके पी० एच० को कम करके 4 के स्तर पर ला देते हैं, तो इसके दुष्परिणाम सामने होते हैं। अम्लीय वर्षा से विश्व की कई सुन्दर झीलें प्रदूषित हो गयी हैं, प्राकृतिक वन सम्पदा का ह्रास हुआ है। फसलों के उत्पादन एवं भूमि की उर्वरता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अमेरिका के **डॉ० हैमिल्टन** के अनुसार सामान्यतः अम्लीय वर्षा से प्रतिवर्ष 10,000 मनुष्यों की मौत हो रही है। संगमरमर से निर्मित ताजमहल पर धीरे-धीरे चढ़ती कालिमा भी अम्लीय वर्षा का ही परिणाम है। वायु प्रदूषण की समस्या से निपटने के लिए 1987 में मान्ट्रियल में आयोजित एक सम्मेलन में संसार के लगभग 40 राष्ट्रों ने यह तय किया कि सी० एफ० सी० के उत्पादन में 35 प्रतिशत कटौती की जावेगी। जून 1988 में 48 राष्ट्रों के 300 वैज्ञानिकों ने टोरंटों सम्मेलन में वातावरण के बदलाव के खतरे को मद्देनजर रखते हुए अत्यधिक चिन्ता प्रकट की और इसके विनाशकारी परिणामों की ओर दुनिया के समस्त राष्ट्रों का ध्यान आकर्षित किया।

आज समूची दुनिया में 1945 में हिरोशिमा और नागासाकी में प्रयुक्त परमाणु बम से 10 लाख गुने अधिक बम हैं। यदि नाभिकीय युद्ध हुआ तो करोड़ों लोग, नाभिकीय हथियार से या अप्रत्यक्ष विकिरणों से मौत के मुख में समा जावेंगे एवं पृथ्वी का तापक्रम काफी कम हो जावेगा; धूलि-कण समूचे वायुमण्डल मे विकर्षित हो जावेंगे, जो सूर्य के प्रकाश को सीधे पृथ्वी पर आने से रोकेंगे। मौसम-चक्र बुरी तरह से प्रभावित होगा। विकिरणों के फैलाव से लोगों की प्रति संक्रमण-क्षमता घट जावेगी। हैजा व पेचिश जैसी बीमारियों के कारण अनेक लोग मरेंगे। अनुमानतः उत्तरी गोलार्द्ध की 130 लाख आबादी तुरन्त खत्म हो जावेगी। युद्ध के बाद बची आबादी आयनीकृत रेडियाधर्मिता

के कुप्रभाव से विकृत और व्याधिग्रस्त हो जावेगी। बड़े भारी विस्फोट से पैदा हुए सूक्ष्म कण की भारी मात्रा समताप मंडल में पहुँच जावेगी। इस अवरोध के कारण पृथ्वी के तापक्रम में 10 से 40 डिग्री सेल्सियस तक की कमी होने की आशंका है। विस्फोटों से निकला नाइट्रोजन ऑक्साइड, समताप मंडल में छाई सुरक्षा-कवच 'ओजोन छतरी' को क्षतिग्रस्त कर देगा। ऐसी स्थिति में घातक पराबैंगनी किरणों की मार से पृथ्वी पर जीवन असम्भव हो जावेगा। रेडियोधर्मी तत्व पर्यावरण को प्रदूषित कर देंगे। सन् 1985 में 'स्कोप' ('SCOPE' द साइंटिफिक कमटी ऑन प्राव्लम्स ऑव द एन्वायरमेंट) में नाभिकीय युद्ध की विभीषिका को रेखांकित किया गया है। कुल मिलाकर नाभिकीय युद्ध का दुष्प्रभाव, पर्यावरण व मानवता के लिए अभिशाप साबित होगा, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

विश्व कृषि एवं खाद्य संगठन के अनुसार इसी शताब्दी में 60 करोड़ हेक्टेयर से भी ज्यादा क्षेत्र में जंगल साफ किये जा चुके हैं। पिछले 20 वर्षों में औसतन 80 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में फैले जंगल प्रतिवर्ष काटे गये हैं। सिर्फ हमारे देश में प्रतिवर्ष 15 करोड़ टन ईंधन व इमारती लकड़ी इस्तेमाल की जाती है। आज विश्व का अधिकांश भाग वनों की कटाई से रेगिस्तान में तब्दील होता जा रहा है। सन् 1981 व 1982 के अनुसार हमारे देश में केवल 11 प्रतिशत क्षेत्र में ही वन हैं जबकि 'राष्ट्रीय वन नीति' के अनुसार 33 प्रतिशत भाग वनाच्छादित होना चाहिये। ब्रिटिश वैज्ञानिक **नार्मन मार्यंस** के अनुसार गत 30 वर्षों में भारत में गंगातटीय क्षेत्र में 40 प्रतिशत वन समाप्त हो चुके हैं। इस कारण अक्सर भीषण सूखा व बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे भारत को प्रतिवर्ष 1 अरब डॉलर की क्षति होती है। एक अनुमान के अनुसार पेड़ों की अन्धाधुन्ध कटाई से भारत में 220 करोड़ एकड़ भूमि कटाव से ग्रसित है। इस प्रकार लाखों एकड़ भूमि कृषि के अयोग्य हो गयी है।

फसलों की पैदावार बढ़ाने में कीटनाशी रासायनिक पदार्थों जैसे डी० डी० टी०, बी० एच० सी० मैलाथीयान, एन्डीसल्फान आदि का कृषि में महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन इनका प्रयोग निरापद नहीं है। भोपाल गैस कांड ने कीटनाशी (पेस्टिसाइड) रासायनिक पदार्थों की उपयोगिता पर सवालिया निशान जड़े हैं। लेकिन ऐसा समझा जा रहा है कि आने वाले वर्षों में इनके उपयोग में कमी होने के कोई आसार नहीं। समय-समय पर आयोगों एवं पर्यावरणविदों ने इनके अनुप्रयोग से उत्पन्न खतरों की ओर हमारा ध्यान खींचा है। 'थाकर आयोग' (1967) ने इससे सम्बन्धित घटनाओं की चर्चा की है। पर्यावरण क्रान्ति की जननी **रैशेल कार्सन** (1962) ने अपनी पुस्तक, "साइलेंट स्प्रिंग" में इसके कुप्रभावों की चर्चा की है। खेतों में डालते वक्त इनके अंश फसलों के दानों में चले जाते हैं। मिट्टियों में डालने के बाद वर्षा काल में इसके अवशेष पानी के साथ बहकर मुख्य जलधारा में मिलकर जल प्रदूषण की समस्या उत्पन्न करते हैं। स्पष्टतः इसके उपयोग खतरे से खाली नहीं हैं। अतः कीटों से फसलों की रक्षा के लिये समन्वित कीट नियन्त्रण प्रणाली की बात कही गयी है। नवीन कीट प्रबन्धन पद्धतियों के विकास में वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं, जिसमें कीटनाशी पदार्थों के बुद्धिमत्तापूर्ण सन्तुलित वितरण के लिये नूतन यन्त्र व प्रणालियों का विकास किया जा रहा है। राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पुणे के वैज्ञानिक वनस्पति पर आधारित द्रव्यों का संश्लेषण, अभिज्ञान व निर्माण की दिशा में लगे हैं। अविषैले, प्रतिकर्षक, सम्प्रेरक या अन्य आकर्षक रसायनों व इनके आधार पर प्रदूषणरहित नियन्त्रण प्रणालियों के विकल्प भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के कुप्रभावों के बारे में आम आदमी में जागरूकता पैदा करने के क्रम में वैज्ञानिक संगठन, प्रबुद्ध वर्ग, सरकारी एजेंसियाँ व स्वयंसेवी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। स्कूली कक्षाओं से लेकर विश्व-

विद्यालय स्तर के पाठ्यक्रमों में पर्यावरण शिक्षा को समाहित किया जाना चाहिये। पर्यावरण विभाग, भारत सरकार ने अहमदाबाद में सन् 1984 में 'सेन्टर्स ऑव एक्सलेन्स' की स्थापना की थी। यह केन्द्र पर्यावरणीय शिक्षा के क्षेत्र में कार्यक्रम तैयार करके राष्ट्रीय स्तर पर इसका प्रचार-प्रसार करेगा।

क्या हम पर्यावरण के साथ समन्वय व सामंजस्य स्थापित कर सकेंगे ? क्या हम मानव-सभ्यता को विनाश की अँधेरी सुरंग में प्रवेश करने से रोक सकेंगे ? क्या हम पर्यावरण के प्रति बेहद संवेदनशील व जागरूक रहेंगे व प्रकृति के उपहारों को अपनी लालसा, अपनी इच्छा के अनुरूप विह्वल करने से बाज आवेंगे ? यह ठीक है कि हम पर्यावरण को साफ-सुथरा एवं संरक्षित करने के नाम पर विकास के दरवाजे बन्द नहीं कर सकते हैं, परन्तु प्राकृतिक उपादानों के प्रति जागरूकता के महत्व को भी दरकिनार नहीं कर सकते हैं। भौतिक समृद्धि एवं पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों को साथ-साथ अपनाना होगा। ऐसा करके ही हम अपने व अपनी भावी पीढ़ी के लिये सुनहले व खुशहाल भविष्य के दरवाजे खोज सकते हैं। यदि हम अब भी नहीं चेते तो पर्यावरण प्रदूषण का भीषण दानव (Polyhedral Monster) समूची मानवता के लिये महाप्रलयंकारी सिद्ध होगा।

●●

जहरीले पदार्थों का घातक व्यापार

आज संसार में जहरीले कचरा पदार्थों का एक बहुत बड़ा व्यापार शुरू हो गया है। यही नहीं, पूरे के पूरे उद्योग चल पड़े हैं। इन सब का निशाना संसार के गरीब देश हैं। वे ही इनकी मार सबसे अधिक सह रहे हैं।

पूर्वी जर्मनी को लें। पश्चिम जर्मनी के 'ग्रीन पीस' संगठन का कहना है कि पूर्वी जर्मनी प्रति वर्ष पचास लाख टन कचरा पश्चिम जर्मनी से आयात करता है। पूर्वी जर्मनी में हाल की क्रान्ति के बाद वहाँ के नागरिकों ने माँग की है कि घातक ट्रक उनकी सीमा को पार कर उनके देश में न आएँ।

असली बात यह है कि औद्योगिक देशों को अपना कचरा ठिकाने लगाना होता है। कड़े नियमों के कारण वे उसे अपने यहाँ नहीं दबा सकते। या तो वे उसे चोरी छुपे समुद्र में डालें या अन्यत्र भेजें। लेकिन वे संसार में अन्यत्र दबाने के लिये जहाजों द्वारा भेजते रहते हैं। इसी तरह उद्योग-प्रधान देशों में अनेक कीटनाशक रसायनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। इनसे पैसा कमाने के लिये इन्हें अपने देशों में इस्तेमाल न करके गरीब देशों को भेजा जा रहा हैं। गरीब देशों में नये-नये बाजार खोजे जा रहे हैं। कहीं-कहीं तो पूरे औद्योगिक संयन्त्र ऐसे स्थानों को भेजे जा रहे हैं, जहाँ पर्यावरण अधिनियम ढीले हैं तथा मजदूरी सस्ती है।

गरीब देशों को खतरनाक कचरा भेजे जाने की अफवाहें वर्षों से सुनते आ रहे थे, लेकिन इसकी पुष्टि 1988 में हुई। फिलाडेलफिया (अमेरिका) नगरपालिका इन्सीनरेटर से जहरीली राख से लदे दो जहाजों के निर्यात के सम्बन्ध में काफी समाचार छपे।। "खियान सी" नामक जहाज अगस्त 1986 में रवाना हुआ। यह डेढ़ साल तक

सम्पर्क सूत्र : श्री हरीश अग्रवाल, डी०-40 गुलमुहर पार्क, नई दिल्ली-110049

बड़ी खामोशी से केरीबियन सागर में चक्कर काटता रहा। जनवरी, 1988 में इसके कारनामें का उस समय पता लगा जब इसने हैटी द्वीप के किनारे राख डाली और उसे खाद बताया ! जब सच्चाई सामने आई तब हैटी सरकार ने माँग की कि राख वापस ले जाई जाये। लेकिन तक तक जहाज दूर जा चुका था।

पाँच महाद्वीपों का चक्कर काटने और तीन बार अपना नाम बदलने के बाद "खियान सी" ने 1988 के अन्त में किसी अज्ञात देश में अपना जहरीला कचरा छोड़ दिया। अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण दल "ग्रीन पीस" ने दावा किया कि राख हिन्द महासागर में नवम्बर 1988 में दबाई गई।

नार्वे के एक जहाज ने जहरीला कचरा गैर कानूनी रूप से कोनाकरी के पास एक द्वीप पर डाला। यह बात फरवरी-मार्च 1988 की है। इस पर बड़ी कूटनीतिक गरमा गरमी रही और गिनी में नार्वे के महावाणिज्य दूत को गिरफ्तार कर लिया गया। अन्त में जहाजरानी कम्पनी ने जुलाई में राख उठाने की सहमति दी।

दो साल पहले इसी तरह नाइजीरिया का एक गाँव प्रकाश में आया जहाँ उच्च जहरीले कचरे के आठ हजार ड्रम दबाये गये थे। इसके लिये एक इतालवी फर्म को दोषी ठहराया गया। यहाँ आने वाले यात्रियों ने बताया कि गाँव में उस स्थान की हालत बड़ी खराब थी, जहाँ कचरा दबाया गया था। चारों ओर जहरीला धुँआ उठ रहा था। सारे गाँव में एसिड-धुँआ फैल गया था। ग्रामीणों को उसकी भयावहता का पता नहीं था। सब नंगे पैर ही घूम रहे थे।

यह बताना असम्भव है कि संसार में इस तरह के कितने गाँव हैं जहाँ जहरीले पदार्थ दबे पड़े हैं। इनका कोई रिकार्ड नहीं है। 'ग्रीन पीस' ने अनुमान लगाया है कि 1986 से 1988 के बीच 35 लाख टन जहरीला कचरा गरीब देशों को भेजा गया। अनुमान है कि पश्चिमी कम्पनियों ने 1988 में पं० अफ्रीका में दो करोड़ 40 लाख टन कचरा दबाया।

नाइजीरिया के गाँव का किस्सा चारों ओर फैलने से जहरीले व्यापार में वृद्धि की ओर सब का ध्यान गया। अफ्रीकी देशों के संगठन ने चेतावनी दी कि कचरे का निर्यात अफ्रीका के खिलाफ अपराध है। अनेक देशों ने कानून पास किये। निर्यातकों पर भारी जुर्माना शुरू हुआ। जेल तक के दंड की व्यवस्था की गई। लगभग 81 देशों ने आयात प्रतिबन्ध लागू किया। 'संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम' के तत्वावधान में स्विटजरलैंड में एक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि 1989 में तय हुई। इसके अनुसार निर्यातक देशों को दूसरे देशों की अनुमति लेनी पड़ेगी। प्रस्तावित निपटान सुविधा भी पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित होनी चाहिए। सन्धि पर 53 देशों ने हस्ताक्षर किये हैं, लेकिन चार देशों ने ही सम्पुष्टि की है।

लेकिन अनेक देशों ने इस सन्धि की आलोचना की है। उनका कहना है कि इस घातक और घिनौने व्यापार पर पूरी तरह प्रतिबन्ध लगाना चाहिये। इस सन्धि में परमाणु कचरे को भी शामिल करना चाहिये।

हानिकारक कीटनाशकों के व्यापार से भी बहुत विनाश हो रहा है। ये पदार्द पश्चिमी देशों में नहीं चलते, इसलिये गरीब देशों को भेजकर इनसे काफी धन कमाया जा रहा हैं। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने अनुमान लगाया है कि संसार में दस लाख व्यक्ति कीटनाशक जहर के शिकार होते हैं, जिनमें से पाँच से 20 हजार व्यक्ति मर भी जाते हैं। स्पष्ट है कि अधिसंख्य मौतें गरीबों की ही होती हैं।

अपना जहरीला जखीरा अन्य को भेजकर समस्या हल नहीं होती । यह नैतिक दृष्टि से ही नहीं पर्यावरण की दृष्टि से बहुत खतरनाक है। इससे अनेक निरीह नागरिकों की मौतें होती हैं । आशा है इसे रोकने के लिये कोई विश्व समझौता हो जायेगा । इसके लिये सबसे अच्छा अवसर 1992 में ब्राजील में होने वाला 'संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण व विकास सम्मेलन' होगा । यहाँ इस गहन समस्या को हमेशा के लिये सुलझाना सम्भव होगा ।

●●

[इस्वा फीचर्स से साभार]

ड्रग्स से सावधान

महेन्द्र आर्य

यदि किसी भी भारतीय से देश की ज्वलंत समस्याओं की सूची बनाने को कहा जाये तो उसकी सूची कुछ इस प्रकार शुरू होगी—(1) आबादी (2) गरीबी (3) बेकारी...... दसवें-ग्यारहवें स्थान पर सूची कुछ ऐसा रूप ले लेगी......(10) प्रदूषण (11) यातायात अव्यवस्था...आदि। सत्रहवाँ-अट्ठारहवाँ स्थान आते-आते समस्यायें पूरी तरह राजनैतिक रूप ले लेंगी—(17) मन्दिर-मस्जिद विवाद (18) मण्डल कमीशन (19) पंजाब...... । सूची शायद पचास की संख्या भी पार कर जायेगी फिर भी 'ड्रग्स' जैसी विकट समस्या ज्यादातर लोगों के सोचने की सीमा में नहीं आयेगी । हमारी सबसे बड़ी समस्या यही है कि हम 'ड्रग्स' जैसी विनाशकारी समस्या से, जो हमारे घरों के दरवाजों पर मुँह बाये खड़ी है, परिचित ही नहीं हैं ।

'ड्रग्स' मात्र एक किताबी शब्द नहीं है । यह जहर अलग-अलग रूपों में सारे देश में बिक रहा है । बम्बई जैसे घोर-व्यापारिक शहर में यह प्रायः हर गली-कूचे तथा नुक्कड़ पर मिलता है । इसे बेचने वाले स्कूलों तथा कॉलेजों के पास मँडराते रहते हैं । सबसे आसानी से इनके जाल में फँसने वाले ग्राहक स्कूलों तथा कॉलेजों में पढ़ने वाले छात्र तथा छात्रायें होते हैं । जो छात्र एक बार किसी भी कारण से 'ड्रग्स' का सेवन कर लेते हैं, वे न केवल इस जहर के आदी हो जाते हैं, बल्कि वे 'ड्रग्स' बेचने वालों के एजेंट के रूप में दूसरे बच्चों को भी यह लत लगाने की कोशिश करते हैं ।

इन्हीं बच्चों में एक बच्चा शायद हमारा और आपका भी हो सकता है । उसे इस बुराई से बचाना भी हमारे ही हाथ में है । आपको चाहे कितना भी भरोसा और विश्वास अपने बच्चे पर हो—आप उस पर शक कीजिए । आप उसकी गतिविधियों पर नजर रखिये । आप सावधानी से देखिये कि नीचे लिखे लक्षण कहीं आपके बच्चे में तो मौजूद नहीं हैं—

कॉलेज/स्कूल में : अध्ययन स्तर में गिरावट, कक्षा से अनुपस्थिति, प्रतिस्पर्धा से घबराहट, नये-नये साथी बनाना ।

जोरावर भवन, 93 महात्मा कार्वे मार्ग, मुम्बई-400020

आदतें	: देर रात तक जगाना, दोपहर में सोना, दोस्तों से बन्द कमरों में मिलना, शौचालय में देर तक रहना, अधिक जेब-खर्च की माँग, उधार लेना, कीमती वस्तुओं का घर से गायब होना।
शारीरिक परिवर्तन	: पीला चेहरा, लाल आँखें, आँखों के नीचे कालिमा, भूख, स्वाद तथा वजन में कमी, एकाकीपन, गुप्त रहने की कोशिश, आलस्य, विचारशून्य रहना, झूठ बोलना, अस्पष्ट-वार्तालाप।
मनोवैज्ञानिक परिवर्तन	: चिड़चिड़ापन, क्रोध, शीघ्र आवेश में आना, अनावश्यक प्रतिक्रिया, कुण्ठित तथा शंकालू रहना, सफाई के प्रति उदासीन।
बच्चे के कमरे में	: कपड़ों पर खून के धब्बे, जली हुई रस्सी जैसी गंध, खाली शीशियाँ, आँख में डालने की दवायें, इंजेक्शन, चमकीले कागज के टुकड़े, सिगरेट की तरह लपेटे हुए कागज, दुर्गन्ध नाशक स्प्रे की बोतल।

ये सारे लक्षण किसी भी बच्चे के 'ड्रग्स' का आदी होने के सूचक हैं। यदि आप किसी बच्चे में ये लक्षण देखते हैं तो डॉक्टरी सहायता ले लें। बात चिन्तित होने की अवश्य है, लेकिन हताश होने की नहीं। एक जागरूक माता-पिता अपने बच्चे को पूरी तरह 'ड्रग्स' के खूनी पंजे से छुड़ा सकते हैं।

● ●

ब्रह्मांड-विषयक सात विचार

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

सभी विज्ञानों में भौतिकी को सर्वाधिक विकसित माना जाता है। इस विज्ञान में भौतिक ब्रह्मांड के विषय में जिज्ञासायें की जाती हैं, जैसे—ब्रह्मांड किस तरह विकसित हुआ? भविष्य में इसका क्या होगा? पदार्थ की बुनियादी इकाइयाँ क्या हैं? प्रकृति की मूल शक्तियाँ क्या हैं? आदि-आदि।

विगत 2,500-3,000 वर्षों में ब्रह्मांड के विषय में मुख्यतः सात विचार प्रस्तुत हुए हैं, जिन्हें भौतिकी के विकास के सात मानदण्ड भी कहा जा सकता है। इन विचारों की विशेषता यह है कि एक तो ये तिथिक्रम में हैं और दूसरे, जिन पदार्थों के विषय में हैं वे उत्तरोत्तर छोटे आकार वाले पदार्थ हैं। उदाहरणार्थ, विराट नक्षत्रों तथा तारों से लेकर परमाणुक, उपपरमाणुक तथा उपनाभिकीय कणों की खोज। आश्चर्य तो यह है कि पदार्थों के लघुतर और लघुतम होने के साथ-साथ, जो शक्ति पहले गुरुत्वाकर्षण जैसी अत्यन्त क्षीण शक्ति थी, वह प्रबल से प्रबलतर होती हुई

निदेशक, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-211002

क्वार्कों को बन्धित रखने वाली प्रबलतम शक्ति के रूप में अनुभव की जाने लगी है। आज भौतिकी के क्षेत्र में जो वैचारिक क्रान्ति परिलक्षित होती है, वह पदार्थ तथा शक्ति के मूलभूत पक्ष से हटकर नितांत अमूर्त बन चुकी है।

यह विदित तथ्य है कि राजनीति से सम्बन्धित वैचारिक क्रान्तियाँ आम चर्चा का विषय बन जाती हैं, किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में जब क्रान्तियाँ होती हैं तो उनसे जनसामान्य भले ही आन्दोलित न होता हो परन्तु उनका दूरगामी परिणाम होता है, जिससे बौद्धिक विश्व दहलता है। मगर ऐसी क्रान्तियाँ रातोंरात नहीं होतीं, न कभी हुई हैं। इनके होने में शताब्दियाँ नहीं तो कई शताब्दियाँ अवश्य लग जाती हैं। इन क्रान्तियों से ब्रह्मांड के विषय में नवीन संकल्पनाएँ प्राप्त हुई हैं, जिनसे सोचने की शैली प्रभावित हुई है और ब्रह्मांड को समझने की नयी दृष्टि मिली है।

ऐसे किसी भी नियम को जो भौतिक नियमों की अवज्ञा अथवा विरोध करता हो, विज्ञान में स्वीकृति नहीं मिल पाती। किसी भी विज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि वह वर्णन किये जाने वाले पदार्थों का संकलन और वर्गीकरण करे तथा विभिन्न कारणों को समझाने की कोई संकल्पना प्रस्तुत करे। इस समझने-समझाने को भौतिकी में सर्वाधिक महत्व प्रदान किया जाता रहा है। भौतिकी की प्रगति-यात्रा में जितने नये मोड़ आये हैं, उतनी ही नई विचार-सरणियाँ भी मिलेंगी। लेकिन उनकी पहचान करना कोई सरल कार्य नहीं है। नैथन स्पीलबर्ग तथा ब्रायन डी० ऐन्डरसन ने अपनी पुस्तक "सेवेन आइडियाज दैट शुक द वर्ल्ड" में पर्याप्त विचारमन्थन के बाद जिन सात विचारों को विज्ञान में युगान्तर प्रस्तुत करने वाला माना है, वे सचमुच रोचक हैं। आगे उन्हीं की चर्चा होगी।

भौतिकी में मुख्यतः पदार्थ तथा गति के विषय में विचार होता है। वैसे तो चरम सीमा में पदार्थ को निरन्तर गतिशील माना जाता है, किन्तु यदि गति को शून्य मान लिया जाये तो पदार्थ "शून्य बिन्दु गति" या "शून्य बिन्दु ऊर्जा" की स्थिति में होगा। भौतिकी में कभी भी बुद्धि को पदार्थ तथा गति से ऊपर नहीं माना गया है। दार्शनिकों तथा भौतिकीविदों में यही अन्तर है।

भौतिकी को समझने के लिये गणित का ज्ञान परमावश्यक है। किन्तु कुछ विज्ञान-लेखकों ने न्यूनतम गणित-ज्ञान के आधार पर विचारों को समझाने का प्रयास किया है। जिस तरह संगीत केवल गायकों और वादकों तक ही सीमित नहीं रहता, उसी तरह विज्ञान केवल गणितज्ञों तक ही परिसीमित नहीं हो सकता। कहते हैं कि माइकेल फैराडे ने अपने सीमित गणित-ज्ञान के बल पर भौतिकी तथा रसायन-विज्ञान में प्रभूत योगदान किया। लेकिन इसके लिए गहन अध्ययन के साथ ही मननशीलता भी आवश्यक है।

कुछ लोग विज्ञान की तुलना जादू से करते हैं। कुछ हद तक विज्ञान तथा जादू में आश्चर्यजनक समानताएँ हैं भी। किन्तु विज्ञान का ज्ञान तथा व्यवहार सबके लिये सुलभ है, जबकि जादू कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित होता है। फिर भी दोनों के पीछे एक-सी जिज्ञासायें कार्य करती हैं। रसायन विज्ञान का तो जन्म ही जादू-कीमियागरी से हुआ। आज भी कुछ जादूगरनियाँ पुतला बनाकर मारण-उच्चाटन आदि प्रयोग करती हैं और सम्प्रति विज्ञान और प्रौद्योगिकी में मॉडलों का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है। इसी तरह विज्ञान और धर्म में भी समानतायें हैं। किन्तु विज्ञान अपने नियमों में संशोधन स्वीकार करता है, जबकि धर्म अपने नियमों को अटल मानता है। इसीलिए धर्म को विज्ञानसम्मत बनाने में सफलता नहीं मिल पा रही है।

यदि कोई यह कहे कि विज्ञान चमत्कार है, तो यह गलत है। विज्ञान किसी दैवी प्रेरणा का प्रतिफल नहीं। उसकी परीक्षा की जा सकती है। उसकी अपनी विधि है, जो "वैज्ञानिक विधि" के नाम से जानी जाती है। विज्ञान केवल उन्हीं तथ्यों को स्वीकार करता है, जिनकी परीक्षा की जा सकती है, फलतः विज्ञान कभी भी मानवीय आचरण, नैतिकता या इच्छा का मार्गदर्शन नहीं कर सकता। यही नहीं, विज्ञान इस सवाल का भी कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सकता कि इस ब्रह्मांड का अस्तित्व क्यों है।

विज्ञान का व्यवहृत रूप प्रौद्योगिकी है। मनुष्य की सुख-सुविधा के सारे साधन प्रौद्योगिकी में आते हैं। टेलिविजन, दवाएँ, जहाज, वस्त्र—ये सब प्रौद्योगिकी के घटक हैं, किन्तु ये विज्ञान के घटक नहीं हैं। विज्ञान के घटक हैं—न्यूटन के गति-नियम, प्रकाशवैद्युत् नियम, अर्धचालक भौतिकी आदि। संक्षेप में, विज्ञान जानकारी है और प्रौद्योगिकी जानकारी का व्यवहार। इन दोनों का मेल लाभप्रद होता है। इसीलिये सभ्य समाजों में वैज्ञानिक शोधों पर प्रचुर धन व्यय किया जाता है।

विज्ञान का अध्ययन इसलिये आवश्यक है कि वह प्रकृति के रहस्योद्घाटन में सहायक है और उसमें वह शक्ति निहित है जो मनुष्य को विनाश से बचाकर उसका कल्याण कर सकती है। इसीलिये विगत 3,000 वर्षों में वैज्ञानिकों ने जितने भी नये विचार प्रस्तुत किये हैं, उनमें से सात को चुनकर यहाँ उनका परिचय दिया जा रहा है।

1. पृथ्वी ब्रह्मांड का केन्द्र नहीं है (कोपर्निकस का ज्योतिष)

अरस्तू से लेकर कोलम्बस के समय तक यह विश्वास प्रचलित था कि हमारी पृथ्वी ब्रह्मांड के केन्द्र में स्थित है। किन्तु जो पहली वैज्ञानिक क्रान्ति हुई, वह थी यह नया विचार कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने वाले ग्रहों में से एक लघु ग्रह मात्र है। यही नहीं, अब तो हमें यह भी ज्ञात है कि स्वयं सूर्य आकाश गंगा—जैसे विशाल तारा समूह के केन्द्र से विलग एक साधारण तारा है। इस वैचारिक क्रान्ति का श्रेय कोपर्निकस को है। उसने प्राचीन ज्योतिष को पलटकर गति-विषयक विचारों को मान्यता दिलायी।

2. ब्रह्मांड निश्चित नियमों के अनुसार संचालित एक यन्त्र है (न्यूटन की भौतिकी)

विश्व के समस्त पदार्थ भौतिकी के नियमों के अधीन हैं। न्यूटन ने गति के नियम तथा विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण का अध्ययन किया, जिससे कोपर्निकस के ज्योतिष में निहित विचारों को ठोस आधारभूमि प्राप्त हो सकी। न्यूटन ने गति के विषय में जो तीन नियम प्रस्तुत किये, उनमें से दूसरा है कार्य-कारण नियम। यह नियतिवाद तथा स्वेच्छा इन दो विरोधी विचार-धाराओं को भी निर्धारित करता है।

3. इस विश्व यन्त्र को चलाने वाला तत्व ऊर्जा है (ऊर्जा की संकल्पना)

यद्यपि यान्त्रिकी (मैकेनिक्स) की संकल्पना न्यूटन ने दी, किन्तु वह ब्रह्मांड को पूरी तरह समझाने में असमर्थ थी। प्रश्न था कि इस अद्भुत यन्त्र को कौन चालू रखता है? पुराने लोग बुद्धि को या आदि गतिदाता (प्राइम मूवर) को इसका श्रेय देते थे। किन्तु आधुनिक विचार के अनुसार, विश्वयन्त्र का संचालन ऊर्जा द्वारा होता है। ऊर्जा कई रूपों में प्रकट होती हैं और ये विभिन्न रूप एक-दूसरे में परिवर्तित हो सकते हैं। ऊर्जा की तुलना धन

से की जा सकती है । धन का अर्थ है—विनिमय यानी मनुष्यों के बीच आदान-प्रदान । जिस प्रकार प्राप्य धन की एक सीमा होती है, उसी तरह प्राप्य ऊर्जा की भी सीमा है । (ऊर्जा-संरक्षण) ।

4. यह विश्वयन्त्र विशिष्ट दिशा में चलता है (एन्ट्रॉपी तथा सम्भावना)

यद्यपि ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्ति हो सकती है, किन्तु इस परिवर्तन की भी कुछ सीमायें हैं। परिवर्तनशीलता की सीमायें पासे की तरह "संयोग" पर निर्भर हैं । इससे ऐसा लगता है कि नियतिवाद का विरोधी चक्र भी हो सकता है । ऊष्मा को भी ऊर्जा का अवनत रूप मानना होगा ।

5. तथ्य सापेक्ष हैं, किन्तु नियम अखंड हैं (सापेक्षवाद)

यह विचार **कोपर्निकस** के ज्योतिष में भी था, किन्तु सर्वप्रथम **आइन्स्टाइन** ने इस पर ध्यान दिया । वह इस पर विचार कर रहा था कि कौन-सी वस्तुयें सभी प्रकार से सार्वदेशिक हैं । अन्ततः उसने अचर [परम] वस्तुओं से (यथा प्रकाशवेग) से प्रारम्भ करके यह दिखा दिया कि दिक् तथा काल भी सापेक्ष हैं । उसने दिक् तथा काल का पुनरावलोकन किया। उसने सिद्ध कर दिया कि दार्शनिक तथा आधिभौतिक विचारों को ताक पर नहीं रखा जा सकता ।

6. न तो भविष्यवाणी सम्भव है, न हर वस्तु जानी जा सकती है (क्वान्टम सिद्धान्त)

परमाणु की सूक्ष्म संरचना को जानने के प्रयास से इस विचारधारा को बल मिला है । बीसवीं सदी के प्रारम्भ में वैज्ञानिक यह जानते थे कि परमाणुओं की रचना इलेक्ट्रॉनों तथा नाभिकों से हुई है । जब इलेक्ट्रॉनों की गति जानने के प्रयास हुए तो कोई स्पष्ट चित्र नहीं बन पाया, फिर भी सही-सही चित्रण तो प्राप्त ही है । अतः परमाणुओं तथा नाभिकों को नयी विधि से वर्णित करना पड़ा । तन्त्रों (सिस्टम्स) का अस्तित्व कुछ "क्वांटम अवस्थाओं" में सम्भव था। मापे गये परिमाण "प्रायिकताओं" के रूप में व्यक्त हुए । इस अस्पष्ट चित्र से भी रसायन, ट्रांजिस्टर, लेसर, राडार, एन्टीबायोटिक आदि को समझा जा सकता है ।

7. मूलतः वस्तुयें कभी बदलती नहीं (सिद्धान्तों तथा समितियों का संरक्षण)

प्रचलित विश्वास तो यही है कि सभी वस्तुयें बदलती हैं, किन्तु इसकी विरोधी विचारधारा भी विद्यमान हैं । पर उसका पूरा-पूरा उपयोग समझ में नहीं आ रहा । इसमें से कुछ परिणामों को तो स्थिर, अपरिवर्तित माना जाता है । तो भी भौतिकीविद् निरन्तर इसकी खोज में हैं कि पदार्थ की वह संरचना क्या है, जिसमें इतनी मात्रा में शक्ति लगी है (यथा, क्वार्क) जिनसे प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन बने हैं । प्रश्न यह है कि क्या पदार्थ तथा ऊर्जा को दिक्-काल की सीमा से पृथक किया जा सकेगा ? भले ही हमें इसका अन्तिम उत्तर न मिल पाये, किन्तु भौतिकीविद् निरन्तर शोधकार्य कर रहे हैं ।

●●

[प्रेस ट्रस्ट फीचर]

परिषद् का पृष्ठ

(1) विज्ञान परिषद् की वाराणसी शाखा से

17-7-91 की शाखा परिषद् की ओर से काशी विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में एक अत्यन्त सामयिक एवं रोचक विषय पर व्याख्यान आयोजित किया गया। व्याख्यान का विषय था : **कहाँ भटक गया है मानसून ?** और व्याख्याता थे भू-भौतिकी विभाग के जाने माने ऋतु विज्ञान विशेषज्ञ **डॉ॰ युगल दास चट्टोपाध्याय**। कार्यक्रम की अध्यक्षता विज्ञानसंकाय प्रमुख **प्रो॰ देवेन्द्र कुमार राय** ने की और संचालन परिषद् के सचिव **डॉ॰ श्रवण कुमार तिवारी** ने किया।

डॉ॰ चट्टोपाध्याय ने बताया कि, पिछले चार सालों में भारतीय मौसम विज्ञान विभाग सोलह पूर्व-सूचकों के आधार पर मानसून के आगमन की भविष्यवाणी करता आ रहा है। पिछले लगातार तीन वर्षों में यह भविष्यवाणी काफी हद तक सही पाई गई थी। इस साल भी यह अनुमान लगाया गया था कि मानसून की वर्षा इस साल सामान्य से सम्भवतः कुछ कम ही होगी, किन्तु मानसून का आगमन जून के आरम्भ में ही हो जायगा। तदनुसार केरल तट पर मानसून का आगमन अनुमान से भी पहले ही, 2 जून को ही हुआ। तत्पश्चात् यह शीघ्र ही पूरे दक्षिण भारत तथा उत्तर पूर्व भारत में 10 जून तक छाया रहा। परन्तु इसके बाद इसका जोर सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिम भारत में कमजोर पड़ता गया और अन्ततः एक माह तक इसका कहीं अता-पता नहीं रहा। दक्षिण भारत में तो वर्षा हो रही है, किन्तु उत्तर भारत में सूखे की स्थिति उत्पन्न हो चली है।

क्या कारण है कि मानसून इस तरह आकर भटक गया है ? इसे जानने के लिए उन पूर्व-सूचकों या प्राचलों की अच्छी तरह जाँच करने की आवश्यकता है। मानसून के आगमन की भविष्यवाणी करने के लिए जिन पूर्व-सूचकों या प्राचलों (या आँकड़ों) की सहायता ली जाती है उनकी संख्या सोलह है, जिनमें से चार **दक्षिणी दोलन** के आँकड़े हैं और दो **एल नीनो** के विभिन्न रूप हैं। जब पूर्वी प्रशान्त महासागर में उच्च दाब का क्षेत्र रहता है तब पश्चिमी प्रशान्त महासागर तथा भूमध्य रेखीय हिन्द महासागर में निम्न दाब का क्षेत्र रहता है, और कभी-कभी यह स्थिति उल्टी भी हो सकती है। इसी को **दक्षिणी दोलन** कहा जाता है। इसे व्यक्त करने के लिए एक सूचकांक का उपयोग किया जाता है, जिसे **दक्षिणी-दोलन-सूचकांक** कहते हैं। यह वास्तव में **ताहिती-डारउईन** के समुद्री सतह पर का वायु-दाब है। पूर्वी प्रशान्त महासागर में साधारणतः तापमान पश्चिमी प्रशान्त महासागर से कम रहता है, लेकिन दो से पाँच साल के अन्तर पर यह स्थिति उलट जाया करती है : तब पूर्वी प्रशान्त महासागर में (इक्वेडोर-पेरू आदि देशों के आस-पास) तापमान सामान्य से अधिक हो जाता है। इसे ही **एल नीनो** कहते हैं। चूंकि यह स्थिति बहुधा दिसम्बर के अन्त में होती है, इसीलिए इसे यह नाम दिया जाता है, जिसका अर्थ है **बालक क्राइस्ट**। स्पेनिश भाषा में इसे **एल नीनो** कहते हैं। **एल नीनो के समय** दक्षिणी दोलन सूचकांक ऋणात्मक होता है। चूँकि दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, इसलिए इसे एक ही नाम **एनसो (एल नीनो साउदर्न आक्सिलेशन)** कहा जाता है। पिछले 100 वर्षों में भारत में 19 बार मानसून कमजोर रहा और इनमें से 10 बार **एनसो** के प्रभाव से ही ऐसा हुआ था और देश में सूखा पड़ा था। एनसो केवल मानसून को ही नहीं वरन् विश्व में अनेक स्थानों के जलवायु को प्रभावित करता है, इसीलिए वाशिंगटन स्थित **क्लाइमेट-एनालिसिस सेन्टर** द्वारा एनसो तथा अन्य मौसम प्राचलों पर आँकड़े तैयार किये जाते हैं।

आँकड़ों के ये बुलेटिन भारत में तत्काल उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। गत मई 1991 के बुलेटिन के अनुसार प्रशान्त महासागर में परिस्थितियाँ पुनः एनसो की ओर अग्रसर हो रही हैं, यथा (1) दक्षिणी दोलन सूचकांक मार्च, अप्रैल तथा मई, तीनों महीनों में ऋणात्मक हैं। मई में तो यह सर्वाधिक ऋणात्मक—1.6 हो गया था। (2) प्रशान्त

महासागर के भूमध्य-रेखीय विशाल क्षेत्र में सागर तल का तापमान मई में सामान्य से 0.5° से० 1.0° से० तक ज्यादा हो गया था। (3) भूमध्य-रेखीय पूर्वी हवाएँ कमजोर पड़ गई हैं। ये सब बातें **एनसो** की सूचक हैं। इनके चलते हीउत्तर-पश्चिम भारत में 1991 में मानसून के कम पड़ने की सम्भावनाएँ बढ़ गई हैं।

उपर्युक्त विवेचन का यह मतलब नहीं है कि इस वर्ष उत्तर-पश्चिम भारत में वर्षा होगी ही नहीं। वर्षा तो होगी ही, परन्तु यह सामान्य से कुछ कम होगी। मानसून के भटकने का एक स्थानीय कारण यह भी है कि इस बार 14 जून तक बंगाल की खाड़ी में कम दाब का कोई भी क्षेत्र नहीं बना। ऐसा क्षेत्र ही मानसूनी हवाओं को उत्तर-पश्चिम की ओर ढकेलता है, और इसके फलस्वरूप वर्षा होती है। जुलाई में औसतन 2 या 3 ऐसे कम दाब के क्षेत्र बन जाया करते हैं। 14 जुलाई को खाड़ों में पहला कम दाब का क्षेत्र बना है और उसके उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ने से मानसून उत्तरी भारत में सक्रिय हो गया है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में, सन् 1982 में भी मानसून बहुत देर से आया था—14 जुलाई। उस साल पूर्वी उत्तर प्रदेश में तो मानसून सामान्य रहा किन्तु पूरे देश के हिसाब से उस साल सूखा ही पड़ा था। ज्ञातव्य है कि उस साल भी एनसो की स्थिति उत्पन्न हुई थी। —डॉ० श्रवण कुमार तिवारी, वाराणसी

(2) 'विज्ञान' जुलाई अंक का विमोचन

दिनांक 3-8-91 को विज्ञान परिषद् द्वारा आयोजित एक सादे समारोह में 'विज्ञान' पत्रिका के जुलाई अंक 'मानवकृत एवं प्राकृतिक आपदायें' का स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती जी ने विमोचन किया। प्रारम्भ में पत्रिका के सम्पादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने बताया कि गत 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर इसी विषय पर एक गोष्ठी हुई थी। उसी समय इस अंक की रूपरेखा तैयार हुई और एक हफ्ते की एक कार्यशाला के माध्यम से सूखा, बाढ़, रेगिस्तानों का विस्तार, भूकम्प, चक्रवात, सुनामी जैसे विषयों पर लेख तैयार करके 60 पृष्ठों का एक विशेषांक तैयार किया गया।

पत्रिका का विमोचन स्वामी सत्यप्रकाश जी ने एक मंत्र के पाठ से किया जिसका आशय था अभी तक तू बंधन में थी, मैं तुझे बंधन मुक्त करता हूँ। इस अवसर पर बोलते हुए स्वामी जी ने कहा कि 1971 में संन्यास लेने के बाद वे परिव्राजक के रूप में नैरोबी गए थे। वहीं उन्होंने बच्चों के पाठ्यक्रमों में 'पर्यावरण' विषय के बारे में पहली बार इस विषय का परिचय प्राप्त किया। केन्या में भी इस समय 'प्रदूषण' की चर्चा जोरों पर की जा रही थी। भारत में 'प्रदूषण' अथवा 'पर्यावरण' उस समय कम चर्चित था। आगे बोलते हुए स्वामी जी ने बताया कि अब उन्हें 'पर्यावरण' और 'प्रदूषण' शब्दों से अरुचि सी हो गई है। किन्तु 'विज्ञान' के जुलाई अंक को देखकर ऐसा लगा जैसे कि पहली बार पर्यावरण को समझने का प्रयास किया गया है। मानवकृत एवं प्राकृतिक दोनों प्रकार की आपदाओं के विषव में एक साथ इतनी अधिक सामग्री एक अंक में प्रकाशित करने के लिए उन्होंने विज्ञान परिषद्, पत्रिका के सम्पादक और शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान के अध्यापकों और विद्यार्थियों की प्रशंसा की क्योंकि अधिकतर लेख इसी शोध संस्थान द्वारा लिखे गए हैं। स्वामी जी ने सुझाव दिया कि इस अंक में प्रकाशित सामग्री को पुस्तकाकार और प्रत्येक आपदा पर लघुपुस्तिका के रूप में प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है। उन्होंने जनसामान्य में इस विषय के प्रति चेतना जाग्रत करने और परिषद् के कार्य को आगे बढ़ाने पर बल दिया।

सभा के अध्यक्ष प्रो० चन्द्रिका प्रसाद जी ने इस विषय पर एक अखिल भारतीय गोष्ठी आयोजित करने, विशेषज्ञों, लेखकों, सम्पादकों और विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधियों को एक मंच पर बुलाकर संगोष्ठी आयोजित करने का सुझाव दिया। परिषद् के पूर्व प्रधान मंत्री एवं शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान के निदेशक डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने संगोष्ठी के आयोजन के लिए राज्य और केन्द्र सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त करने का सुझाव दिया। अन्त में समारोह के आयोजक और संचालक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

—प्रस्तुति: प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम : प्रदूषण रोधी वृक्ष

लेखक : विष्णु दत्त शर्मा

प्रकाशक : किताब घर, अन्सारी रोड
24/4866, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ संख्या 132

मूल्य : रु० 50/-

यह पुस्तक कुछ महत्वपूर्ण ओषधीय गुणों से युक्त प्रदूषणरोधी वृक्षों का विवरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से लिखी गयी प्रतीत होती है । इसमें लेखक ने 92 वृक्षों का वर्णन किया है । प्रत्येक वृक्ष के सम्बन्ध में संकलित जानकारियों को चार भागों में विभक्त किया गया है :

(1) भाषायी नाम भेद—इस खण्ड में विभिन्न भारतीय भाषाओं में सम्बन्धित वृक्ष का नाम दिया गया है ।

(2) संस्कृत नाम—सम्बन्धित वृक्ष के संस्कृत पर्याय का वर्णन इस खण्ड में हैं ।

(3) विवरण—इस खण्ड में वृक्ष से सम्बन्धित साधारण जानकारी, प्राप्ति स्थान, धार्मिक-पौराणिक विवरण तथा पहचान हेतु विभिन्न अंग-प्रत्यांगों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है ।

(4) गुण—इस खण्ड में वृक्ष के औषधीय गुणों का वर्णन किया गया है जो शुद्ध रूप से आयुर्वेदिक पद्धति पर आधारित है । इस खण्ड को पूर्णतया समझने के लिए आयुर्वेद के शब्द कोश की आवश्यकता पड़ सकती है ।

पुस्तक एक नजर में आकर्षित कर सकने में सक्षम है, जिसका श्रेय कलात्मक और रंगीन आवरण तथा शीर्षक को है, परन्तु शीर्षक पुस्तक की अन्तर्वस्तु मे पूरी तरह से मेल नहीं खाता । 'प्रदूषण रोधी' से सीधा तात्पर्य है जो प्राकृतिक रूप में रहते हुए वातावरण को प्रदूषकों से मुक्त रख सके परन्तु पुस्तक में केवल एक वृक्ष निर्मली का वर्णन (पृष्ठ 69) मिलता है, जिसके बारे में लेखक का कहना है कि यह जल को निर्मल करता है । यूँ तो सभी हरे पेड़ प्रदूषण रोधी वृक्ष हैं क्योंकि वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड एवं कुछ अन्य विषैली गैसों की बढ़ी हुई मात्रा का अवशोषण करके वायु-प्रदूषण को कम करते हैं ।

दैनिक जीवन में होने वाली व्याधियों की प्राकृतिक चिकित्सा में रुचि रखने वालों को यह पुस्तक अवश्य आकर्षित करेगी । तुरन्त सन्दर्भ के लिए प्राकृतिक चिकित्सक या जनसाधारण द्वारा संग्रह करने योग्य पुस्तक बन पड़ी ।

पर्यावरण संरक्षण तथा 'चिपको आन्दोलन' का समर्थन (इनर-फ्लैप, जैकेट) हेतु लेखक साधुवाद के पात्र है।

पुस्तक में सूचियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही वृक्षों की सूची उनके हिन्दी नामाक्षर के आधार पर क्रमवार बनाई गई है, जिसमें कूजा (पृष्ठ 39), तमाल (आबनूस, पृष्ठ 57) तथा सदाबहार (पृष्ठ 104) वृक्षों के वानस्पतिक नामों का उल्लेख नहीं है। पुस्तक के अन्त में 13 पृष्ठों का एक परिशिष्ट है। परिशिष्ट का प्रारम्भ "कल्पवृक्ष" से होता है जिसमें इससे सम्बन्धित धार्मिक पौराणिक किवदन्तियाँ तथा परिचय है। "शाब्दिक परिभाषाएँ" के अन्तर्गत 11 शब्दों की व्याख्या एक पृष्ठ में ही की गई है जिनका उल्लेख वृक्षों के औषधीय गुणों के वर्णन में यत्र-तत्र हुआ है। पारिभाषिक शब्दावली में विभिन्न रोगों एवं अन्य सम्बन्धित चिकित्सकीय शब्दों के अँग्रेजी पर्याय दिये गये हैं। अन्तिम 3 पृष्ठों में "अनुसूची" है जिसमें क्रम वानस्पतिक नामों के आधार पर रखा गया है। वानस्पतिक नाम के साथ हिन्दी नाम और पृष्ठ संख्या भी दी गई है जिससे वांछित विवरण तुरन्त प्राप्त किया जा सकता है। इस सूची में दो वृक्ष *Pterocarpus santalum* तथा *Santalum flonum* ऐसे हैं जिनका विवरण पुस्तक में नहीं है। परिशिष्ट के कल्पवृक्ष (*Adinsonia digitata*) और उपरोक्त दोनों वृक्षों को मिलाकर संख्या प्रथम सूची के बराबर (92) कर दी गई है। सारे वृक्षों के वैज्ञानिक ढंग से नहीं लिखे गये हैं। द्विनाम पद्धति के अनुसार वंश (Genus) के नाम का प्रथम अक्षर 'कैपिटल' में होना चाहिये जो ठीक है किन्तु जाति (Species) के नाम का पहला अक्षर 'स्माल' होनी चाहिए। पूरी पुस्तक में यह त्रुटि है। दूसरे दोनों वंश और जाति नाम तिरछे बारीक अक्षरों (Italics) में होना चाहिए। 'स्पेलिंग' की अनेक त्रुटियाँ हैं।

हिन्दी में विज्ञान-साहित्य का सर्वथा आभाव है। इस दृष्टि से समीक्ष्य पुस्तक एक सराहनीय प्रयास है। यह इसलिये भी कि इस पुस्तक में वर्णित अधिकांश वृक्षों के वैज्ञानिक पक्ष के साथ-साथ व्यावहारिक पक्ष भी प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक का सर्वथा उत्कृष्ट पक्ष है इसका व्यवहारिक होना। यदि पुस्तक में वृक्षों के चित्रों का समावेश किया जाता तो और भी अच्छा होता। वृक्षों के गुण विशेष में रुचि रखने वाले जिज्ञासुओं के लिये पुस्तक अच्छी बन पड़ी है। लेखकीय में 'यज्ञ' और 'हवन' के समर्थन को अनावश्यक विस्तार दिया गया है।

बिना चित्रों वाली 132 पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य (रु० 50/-) जनसाधारण की दृष्टि से अधिक है। व्यक्तिगत पाठकों हेतु पेपरबैक संस्करण अपेक्षाकृत उचित मूल्य पर उपलब्ध करवाना चाहिये। आशा है पुस्तक के द्वितीय संस्करण में इंगित त्रुटियों का परिहार हो जायेगा।

कुल मिलाकर इस पुस्तक के लेखक और प्रकाशक दोनों ही साधुवाद के पात्र हैं।

—सतीश कुमार कुशवाहा
143-ए, ओल्ड लश्कर लाइन्स
इलाहाबाद-211003

नया साहित्य

हरियाणा साइंस बुलेटिन (परख)

आलोच्य अंक : जनवरी 91 से जुलाई 91 तक

हरियाणा विज्ञान मंच की मासिक पत्रिका

पता : हरियाणा साइंस बुलेटिन
136/22 विजय पार्क, रोहतक-124001

पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी में विज्ञान जगत् से सम्बन्धित कई पत्रिकाएँ देखने को मिली हैं। उनमें 'हरियाणा विज्ञान मंच' की मासिक बुलेटिन 'परख' एक अच्छा प्रयास है। जमीन से जुड़ी एक संस्था का मुखपत्र होने के कारण यह और भी महत्वपूर्ण हो जाती है।

मेरे पास समीक्षार्थ सात अंक (जनवरी 91 से जुलाई 91) आये हैं। सभी अंकों में किसी न किसी मुख्य विषय को लेकर एक 'विशेष लेख' एवं कुछ अन्य लेख दिये गये हैं। सभी अंकों के विशेष लेख अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखे गये हैं तथा रोचक और जानकारीपूर्ण हैं। जनवरी अंक में 'प्रदूषण रहित ऊर्जा स्रोत और विकसित देशों की राजनीति', मई अंक में 'धर्म और विज्ञान की मूल अवधारणाएँ', जून अंक में 'पर्यावरण के संरक्षक वन, विनाश के कगार पर', तथा जुलाई अंक में 'लोगों को स्वच्छ पानी एक चुनौती' आदि लेख विशेष उल्लेखनीय हैं। कई अन्य लेख भी रोचक और जानकारी पूर्ण हैं जैसे अप्रैल अंक में 'दवाओं के बारे में सूचना अभाव से नुकसान', मई अंक में 'बाबरी मस्जिद राम जन्म भूमि विवाद : विज्ञान की नजर में' तथा जुलाई अंक में 'बड़े बाँधों की सार्थकता'।

पत्रिका में पं० जवाहर लाल नेहरू कृत 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' का किश्तवार प्रकाशन बढ़िया प्रयास है। यह बच्चों और किशोरों के लिये उपयोगी तो है ही साथ ही एक महापुरुष की लेखनी का परिचय भी कराता है। पत्रिका में कई स्तम्भ भी हैं : जैसे समाचार विचार समीक्षा, हमारी सेहत, रपट, गतिविधियाँ आदि। इनमें 'हमारी सेहत' स्तम्भ बहुत अच्छा है। लेकिन यह नियमित नहीं दिया जा सका है। इस स्तम्भ के अन्तर्गत महिलाओं और बच्चों के सामान्य स्वास्थ्य के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारियाँ दी गई हैं। 'गतिविधियाँ' और 'रपट' आदि में हरियाणा के बाहर की जानकारियाँ बहुत कम दी गई हैं। देश में अन्य वैज्ञानिक संस्थाओं से सम्पर्क बनाकर हरियाणा के बाहर की जानकारियाँ दी जानी चाहिये।

पत्रिका में दी गई सामग्रियों, साज-सज्जा आदि से पत्रिका स्तरीय है। लेकिन ऐसा लगता है कि इसे जबरन हरियाणा तक ही सीमित रखने का प्रयास किया जा रहा है। पत्रिका के आवरण पर 'हरियाणा साइंस बुलेटिन' काफी मोटे से तथा 'परख' पतले से लिखा जाता है। इसके बजाय यदि 'परख' को मोटे से लिखा जाय या यों कहें कि पत्रिका का नाम ही यदि 'परख' रखा जाय तो देश के किसी भी स्थान के किसी भी बुक स्टाल से यह पत्रिका धड़ल्ले से बिक सकती है।

सम्बन्धित संस्था की गतिविधियों में अंधविश्वास विरोधी 'चमत्कारों का पर्दाफाश' नामक कार्यक्रमों का उल्लेख है। 'चमत्कारों का पर्दाफाश' स्टेज पर होना तो अच्छी बात है लेकिन सामान्य पाठकों के लिये प्रत्येक अंक में एक चमत्कार का पर्दाफाश लिखकर प्रस्तुत किया जाय तो अंक और भी रोचक हो जायेंगे।

—विजय जी

नया साहित्य

त्रैमासिक पत्रिका **'पर्यावरण'**

आलोच्य अंक : वर्ष 3, अंक-1 दिसम्बर 1990

प्रकाशक और वितरक : पर्यावरण और वन मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली

'पर्यावरण' आज का जाना पहचाना और चर्चित विषय है। इस विषय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में ढेरों सामग्री प्रकाशित हो रही है। विज्ञान की लोकप्रिय पत्रिकाओं में भी सर्वाधिक सामग्री 'पर्यावरण' पर ही होती है। मात्र 'पर्यावरण' को केन्द्र में रखकर कुछ पत्रिकायें निकालने के प्रयास भी हुए हैं। लेकिन सम्भवतः ऐसा कोई प्रयास कम से कम हिन्दी में सफल नहीं दिखायी दे रहा है। जबकि इस तरह के साहित्य की माँग समाज में बढ़ती जा रही है।

ऐसी परिस्थिति में भारत सरकार के वन और पर्यावरण विभाग की त्रैमासिक पत्रिका 'पर्यावरण' एक सराहनीय प्रयास है। आलोच्य अंक (वर्ष 3, अंक 1, दिसम्बर 1990) में पर्यावरण से जुड़े विभिन्न विषयों पर करीब दो दर्जन लेख हैं। पर्यावरण से सम्बन्धित कुछ कवितायें तथा पर्यावरणीय समाचार भी हैं। सभी लेख पर्यावरण से जुड़े विभागों के अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखे गये हैं। सम्पादन बढ़िया है। सभी लेखों को जनसामान्य के स्तर पर और रोचक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इस अंक में प्रत्येक जीव मूल्यवान है, प्रकृति के उड़नपुष्प 'तितलियाँ', 'दो दुर्लभ और संकटग्रस्त वृक्षों का संरक्षण', मेघालय का एक कीटभक्षी 'घटपर्णी पौधा', आदि लेख रोचक और सूचनाप्रद हैं। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में दी गई जानकारियाँ भी उपयोगी हैं।

आकर्षक साज-सज्जा, 64 पेजी और रंगीन चित्रों वाली यह पत्रिका फिर भी कई सवाल छोड़ती नजर आती है। यह समझ में नहीं आ रहा है कि पत्रिका निकालने का उद्देश्य क्या है ? पत्रिका निकालने का उद्देश्य यदि जनसामान्य को पर्यावरण की शिक्षा देना और जनजागरण है तो इसमें पर्यावरण के विषय में लिखने वाले स्वतन्त्र लेखकों और पत्रकारों के लेख देने में कोई हर्ज नहीं है। आवश्यक नहीं कि पत्रिका की सामग्री का विषय भारतीय परिवेश ही हो।

पर्यावरण के सम्बन्ध में दुनिया में कहाँ क्या हो रहा है, जैसी सामग्रियाँ भी दी जानी चाहिये। पत्रिका का न तो कहीं मूल्य लिखा गया है और न वार्षिक सदस्यता आदि का ही जिक्र आया है। इससे भ्रम होता है कि पत्रिका पर्यावरण से सम्बन्धित विभिन्न विभागों में तालमेल बनाने के लिए निकाली जा रही है। यदि ऐसा ही है तो इसे और भी अधिक तकनीकी और शोधपरक दृष्टि देनी होगी।

लेकिन हमारा मानना है कि पत्रिका जनसामान्य के लिए उपयोगी है अतः इसे जनसामान्य के लिये उपलब्ध कराने का प्रयास करना चाहिये।

●●

—विजय जी
जवाहर इण्टर कॉलेज, जारी (इलाहाबाद)

विज्ञान समाचार

कु० अर्पिता प्रेमचन्द्र

(1) खाड़ी युद्ध का मानसून पर परवर्ती प्रभाव

इस वर्ष के बहके मानसून ने जहाँ महाराष्ट्र में विनाशकारी बाढ़ को जन्म दिया वहीं बिहार में अत्यन्त वर्षा के कारण भारी सूखा भी उत्पन्न किया। मानसून के दुर्व्यवहार का विश्लेषण करते हुए वैज्ञानिकों का मत है कि इसका सीधा सम्बन्ध खाड़ी युद्ध के परवर्ती प्रभावों से है।

नागपुर विश्वविद्यालय स्थित रीजनल साफिस्टिकेटेड इन्स्ट्रूमेन्टेशन सेन्टर के निदेशक डॉ० जी० एन० नवनीत के अनुसार हाल ही में 1,000 से अधिक प्राणों की बलि लेने वाली नागपुर जिले के मोवाड ग्राम की बाढ़ त्रासदी कुवैत में ईराक द्वारा जलाये गये 600 से अधिक तेल कुओं से विस्तृत धुँए का सीधा कुपरिणाम है। खाड़ी क्षेत्र में संयुक्त राज्य और मित्र राष्ट्रों की सेना से युद्ध के दौरान जनबूझ कर जलाये गये तेल कुओं ने बड़ी मात्रा में भयंकर दुष्प्रभावकारी गैसें छोड़ी हैं। इनमें कालिख और अन्य अपपदार्थों के रूप में कोलाइडल कार्बन, मीथेन, सल्फर डाइ-ऑक्साइड और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड प्रमुख हैं।

एक अन्य वैज्ञानिक डॉ० राव के मतानुसार यदि इसी तरह धुँआ दीर्घकाल तक उत्सर्जित होता रहा तो यह पृथ्वी पर सामान्य ईंधन के जलने और औद्योगीकरण द्वारा उत्सर्जित धुएँ के कुप्रभावों से कई गुना अधिक होगा। अनुमानों के अनुसार विश्व भर में लगभग 200 मिलियन टन प्रतिवर्ष सामान्य ईंधन और उद्योगजन्य धुएँ का उत्सर्जन होता है। खाड़ी के जलते तेल-कुँओं से निकल रहा धुँआ इसके तीसवें भाग से भी अधिक हो सकता है। इस सम्बन्ध में डॉ० राव ने अपने एक लेख में पूर्वानुमान लगाया है, कि "धुएँ ने धरातल के शीतलन को प्रवृत्त किया है" इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप 1991 के मानसून में देर सम्भावित है तथा अगले वर्ष के मानसून पर भी ऐसा ही प्रभाव पड़ सकता है।

ईराक और कुवैत के तेल कुँओं के धुएँ और ज्वालामुखी की राख ने कई स्थानों को प्रभावित किया है जैसे कश्मीर, पश्चिमी चीन, तिब्बत एवं हिमालय के कुछ भाग। इन स्थानों से काली वर्षा (हिमपात) की सूचना मिली है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के नेशनल एयरोनॉटिकल स्पेस एसोसियेशन (नासा), अटलाण्टिक ने भी इस वर्ष हिमराशि के अत्यधिक अल्प होने का संकेत दिया है।

5ई/4 स्टाफ क्वार्टर्स, लिडिल रोड, जार्ज टाउन, इलाहाबाद-211002

(2) वन्यजीव अभयारण्य में बायोमास परियोजना

महाराष्ट्र के अमरावती जिला स्थित शेरों की बड़ी जनसंख्या के लिये प्रसिद्ध वन्यजीव अभयारण्य को एक नयी परियोजना के अन्तर्गत न केवल पारिस्थितिकी विकास कार्यक्रम का ही केन्द्र बनाया गया है बल्कि उसे अभयारण्य की परिधि में आने वाली स्थानीय जनसंख्या के सामाजिक-आर्थिक लाभकारी परिवर्तनों का भी माध्यम बनाये जाने की योजना है।

इस कार्यक्रम का नामकरण अमरावती के तत्कालीन मुख्य कार्यकारी अधिकारी **श्री प्रवीन परदेसी** के नाम पर किया गया है। इसका प्रमुख उद्देश्य वहाँ के 54 गाँवों के निवासियों की बायोमास आवश्यकता पूर्ति के लिए वन एवं वन्यजीवों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना एक समर्थ विकल्प प्रदान करना है।

सम्प्रति लातूर जिले के वर्तमान जिलाधीश के रूप में नियुक्त श्री परदेसी ने इस तथ्य पर बल दिया कि बहुत कड़ाई से दण्डनीति का पालन करके आरक्षित क्षेत्र के निकटवासी लोगों को वनों में प्रवेश एवं वन्यजीवन में हस्तक्षेप से रोकना सम्भव नहीं है। यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है, जब उनकी बायोमास की मूल आवश्यकताओं यथा, ईंधन, भोजन और पशुचारे की माँग को अन्य स्रोतों से प्रभावी रूप से पूरा किया जा सके।

इस कार्यक्रम ने न केवल वन्यजीवों की शंख्या में वृद्धि की है और आरक्षित क्षेत्र को हरा आवरण प्रदान किया है, बल्कि ग्रामवासियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर में भी सार्थक परिवर्तन किये हैं। वे अब ईंधन के लिए जंगल के पेड़ों को नष्ट नहीं करते। वनसीमा का अतिक्रमण अब बीते दिनों की बात लगती है। जब से कार्यक्रम ने बागवानी और कृषि की नवीन विधि की सहायता से लोगों को लाभदायक रोजगार प्रदान करना भी शामिल कर लिया गया है, उनके द्वारा वन और वन्यजीवों को विनष्ट करना समाप्त प्राय है।

मुख्य रूप से कृषि पर आधारित वहाँ की जनजातियों को उनकी आय में वृद्धि के लिये आम, जामुन, आँवला और इमली जैसे फलदार वृक्षों की खेती के लिये प्रोत्साहित किया गया है। पौधे, उर्वरक और कीटनाशक उन्हें निःशुल्क प्रदान किये जाते हैं।

1989-90 की अवधि में निम्न फसल वाली भूकि का लगभग 130 हेक्टेयर भाग प्रयोगात्मक आधार पर फलों की खेती हेतु उपयोग में लाया गया और परिणामस्वरूप 25,000 फलदार वृक्षों का रोपण किया गया।

●●

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठकगण !

पिछले अंक के माध्यम से आपसे कोई बात न हो सकी। क्षमा करेंगे।

आप सब जानते ही हैं कि भारतीय **उपग्रह आई० आर० एस०-1 बी** सोवियत संघ के बैकानूर नामक अन्तरिक्ष केन्द्र से आकाश में प्रक्षेपित कर दिया गया और इसी के साथ अब भारत, अमेरिका, फ्रान्स, जापान सहित उन चार देशों की श्रेणी में आ गया है, जो सुदूर संवेदन में अति परिष्कृत उपग्रह स्वयं बना सकते हैं और स्वयं ही उसे कक्षा में नियन्त्रित भी कर सकते हैं।

900 किलोग्राम भार वाले इस उपग्रह में 700 वाट की सौर ऊर्जा पट्टियाँ और भू-दृश्यों के चित्र खींच सकने वाले तीन कैमरे हैं। यह उपग्रह पृथ्वी के ध्रुवों के निकट 904 किलोमीटर ऊपर चक्कर लगा रहा है और एक

चक्कर में 103 मिनट का समय लग रहा है। अन्तरिक्ष विज्ञानी डॉ० यू० एस० राव के अनुसार इस माह की पन्द्रह तारीख से यह उपग्रह अपना कार्य प्रारम्भ कर देगा और हैदराबाद स्थित 'इसरो' भू-केन्द्र को कृषि, भूगर्भ विज्ञान वानिकी और जलसंसाधन सम्बन्धी आँकड़े भेजने लगेगा। मुझे विश्वास है कि आप भी हमारे साथ भारतीय वैज्ञानिकों को बधाई देना चाहेंगे।

24 अगस्त को श्रद्धेय स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती का जन्मदिन विज्ञान परिषद् में सर्वथा नये तरह से मनाया गया। स्वामी जी ने "मैक्स प्लांक और उनकी क्वांटम की अवधारणा" विषय पर रोचक व्याख्यान दिया। स्वामी जी ने अपने जीवन के सार्थक 86 वर्ष पूरे करके 87वें वर्ष में प्रवेश किया है।

मैक्स प्लांक की 'क्वांटम' की खोज के विषय में स्वामी जी का मानना है कि यह खोज 'शून्य' की खोज की तरह महत्वपूर्ण है। प्लांक ने प्रकाश के सम्बन्ध में सिद्धान्त के रूप में ज्ञान दिया। यह प्लांक की महत्ता है। बाद में आइंस्टाइन और कुछ अन्य महान वैज्ञानिकों ने मैक्स प्लांक की क्वांटम की अवधारणा पर विस्तृत कार्य किया और इसी कारण स्वामी जी मैक्स प्लांक को आइंस्टाइन से बड़ा वैज्ञानिक मानते हैं।

मैक्स प्लांक (मैक्स कार्ल सर्नस्ट लुडविग प्लांक) का जन्म 23 अप्रैल 1858 को कील (जर्मनी) में हुआ था। उन्हें सद्‌गुण विरासत में मिले थे। 21 वर्ष की अवस्था में 1879 में उन्हें डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त हो गई। इसी वर्ष आइंस्टाइन का जन्म हुआ था। मैक्स प्लांक क्वांटम थियरी के जनक के रूप में विख्यात हैं। अनुसन्धान के लिये उन्होंने फिजिक्स विषय चुना। 1918 में उन्हें 'नोबेल पुरस्कार' मिला। संगीत के वे अनन्य प्रेमी थे, पियानो बहुत ही अच्छा बजाते थे। किन्तु उनका जीवन अनेक त्रासदियों से भरा हुआ था। 1909 में उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। यहीं नहीं, पहली पत्नी से उत्पन्न दोनों पुत्रों एवं जुड़वा पुत्रियों के निधन को भी सहना पड़ा। 87 वर्ष की अवस्था में 4 अक्टूबर 1947 को अपनी दूसरी पत्नी एवं उससे उत्पन्न इकलौते पुत्र को छोड़कर वे इस संसार से विदा हो गये।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि "विज्ञान" पत्रिका का एक विशेषांक "जनसंख्या, पर्यावरण और विकास" विषय पर निकालने का निश्चय किया गया है। लेखकों से निवेदन है कि वे अपने आलेख नवम्बर के अन्त तक परिषद् में अवश्य भेज दें। एक और निवेदन यह है कि विषय से सम्बन्धित केवल एक पक्ष ही चुनें और उसी पर आलेख सीमित रखें। आशा ही नहीं मुझे पूर्ण विश्वास है कि सदैव की भाँति मुझे आपका सहयोग प्राप्त होगा।

इसी के साथ एक दुःखद समाचार भी हैं। जोधपुर विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के एसोशिएट प्रोफेसर डॉ० माधवानन्द तिवारी का गत 5 अगस्त को निधन हो गया। वे पिछले कुछ समय से मधुमेह और गुर्दे की बीमारी से पीड़ित थे। गोरखपुर विश्वविद्यालब से 1960 में एम० एस-सी० करने के बाद उन्होने प्रोफेसर उषानाथ चटर्जी के निर्देशन में प्लांट फिजियालोजी में डी० फिल की डिग्री प्राप्त की। एक प्लांट फिजियालोजिस्ट के रूप में उनकी ख्याति देश के बाहर विदेशों में पहुँच चुकी थी और पिछले 28 वर्षों से वे जोधपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध थे। विज्ञान परिषद् के पूर्व सदस्य रह चुके डॉ० तिवारी अपने इलाहाबाद प्रबास के दौरान परिषद् में भी पधारे थे। डॉ० तिवारी अपने पीछे पत्नी डॉ० कान्ता तिवारी, दो पुत्र समीर और सौरभ के अतिरिक्त बन्धु-बान्धवों का विशाल जनसमुदाय छोड़ गये हैं। डॉ० तिवारी को विज्ञान परिषद् परिवार की भाव-भीनी श्रद्धांजलि अर्पित है।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

INDIAN MANAGEMENT AND POLYTECHNIC COLLEGE

(Open University System)

Affiliated by Indian Education Board of U. P.

OFFICE : 2/204 Vishwas Khand, Gomati Nagar, Lucknow-16

पत्राचार इन्जिनियर कोर्स

प्रवेश सूचना 1991-92

भारतीय शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश (पॉलिटेक्निक शिक्षा विभाग) द्वारा तीन वर्षीय सिविल, इलेक्ट्रीकल, इलेक्ट्रोनिक्स, मैकेनिकल, आर्किटेक्चर, डिप्लोमा कोर्स पत्राचार हेतु 40 रु० भेज कर प्रोस्पेक्टस प्राप्त करें।

इन्डियन मैनेजमेंट एन्ड पॉलीटेक्निक कॉलेज, 2/204 विश्वास खण्ड, गोमती नगर लखनऊ-16

नोट : उप परीक्षा केन्द्र हेतु शिक्षा संस्थाओं के आवेदन पत्र आमन्त्रित हैं।

पत्र व्यवहार का पता—

निदेशक
इण्डियन मैनेजमेंट एण्ड पॉलीटेक्निक कॉलेज
2/204 विश्वास खण्ड, गोमती नगर
लखनऊ-16

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1991

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।
(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1991 से दिसम्बर 1991 माह के बीच प्रकाशित हो।
(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है।
(7) विज्ञान परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
(8) वर्ष 1991 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1992 है।

लेख निम्न पते पर भेजें—

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002